ओ३म्

सत्यार्थ प्रकाश प्रश्नोत्तरी

तथा स्वामी जी की जीवन झांकियां

भूमिका भी अवश्य पढ़िए !

प्रकाशक—

मेहरसिंह यमतोल (निर्पक्ष विचारक).

भूतपूर्व आडीटर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब तथा गुरुकुल कांगड़ी
कार्यकर्ता आर्य समाज लाहौर (बच्छोवाली)

सं० २०२१ वि० सन् १९६५ ई०

प्रथम बार १००० मू० ६६ पै०

मिलने का पता—

१—मेहरसिंह यमतोल, क्वार्टर नं० ४०७ तीमारपुर, दिल्ली ६

२—गोविन्दराम हासानन्द, पुस्तकों ... नई सड़क, दिल्ली ।

नोट—यदि किसी विद्वान को उत्तमोत्त... है वो अवश्य लिखें ।

❁ प्राक्कथन ❁

श्री सरदार मेहरसिंह जी आर्य समाज के एक गहरे और विचार शील स्वाध्याय प्रेमी महानुभाव हैं। आर्य समाज की विभिन्न संस्थाओं की सेव करते रहे हैं। ८०-८५ वर्ष की आयु में भी उनका स्वाध्याय निरन्तर चलता रहता है ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का स्वाध्याय करते करते लोगों के मन में विभिन्न प्रसङ्गों के सम्बन्ध में शंकाए हो जाया करती हैं।

श्री सरदार जी ने इन शंकाओं को अनेक विद्वानों के पास भेजकर उनसे इनके समाधान करवाये हैं।

शंकाओं का समाधान स्वाध्याय प्रेमी सज्जनों को मिलता रहे इस अभिप्राय से श्री सरदार जी प्रश्नोत्तरी के रूप में कई पुस्तकें लिख रहे और प्रकाशित कर रहे हैं। प्रचार की दृष्ठि से श्री सरदार जी इन प्रश्नोत्तरियों की बहुत ही नाम मात्र कीमत रखते हैं। आप की संस्कार विधि प्रश्नोत्तरी पहले प्रकाशित हो चुकी हैं स्वाध्याय प्रेमी सज्जनों ने उसे बड़ा पसन्द किया था अब आप की यह सत्यार्थ प्रकाश प्रश्नोत्तरी प्रकाशित हो रही है।

यह बड़ा प्रशंसनीय कार्य हैं। सरदार जी का यह कार्य बड़ा उपयोगी है और इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं। आशा है उनके स्वाध्याय के परिणाम स्वरूप इस प्रकार की और पुस्तकें भी सामने आती रहेंगी।

प्रियव्रत वेदवाचस्पति
आचार्य
गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय

धन्यवाद। श्री विश्वनाथ जी एम० ए० (राजपाल एन्ड सनज, पुस्त[illegible] वाले कश्मीरी गेट, दिल्ली) तथा श्री डाक्टर चूनीलाल जी भाटिया, १२ [illegible] सी. मार्केट, लोधी रोड, नई दिल्ली, प्रत्येक ने ५०) मुझे इस प्रयोजन के [illegible] दिये हैं कि इससे अधिकारी जनों या संस्थाओं को यह पुस्तक मुफ्त या रियाय कीमत पर दी जावे। और कोई सज्जन इस प्रकार का उपकार करना [illegible] तो मैं उनका आभारी होऊंगा।

मेहरसिंह अमतोल
४०७ तिमारपुर दिल्ली

२-२-६५

❀ भूमिका ❀

१-रेलवे लेखा निरीक्षण विभाग से सर्वथा अवकाश पाने पर आर्य समाज के ग्रन्थों का नये सिरे से निर्पक्ष दृष्टिकोण से स्वाध्याय किया। शंकाएं उठना स्वभाविक बात थी। पुस्तकों पर निशान लगाता गया और यथा अवसर विद्वानों की सेवा में उपस्थित करता रहा। जो शंकाएं रह गई वह लिखलीं। उनका बहुत ही छोटा सा परन्तु महत्वपूर्ण नमूना 'वैदिक वर्णाश्रम धर्म पर कुछ विचार' का एक लेख आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को भेजा। उसके सुझाव पर सार्वदेशिक सभा दिल्ली को भेजा। सार्वदेशिक को इसके पश्चात संध्या तथा अन्य विषयों के पत्र भी भेजे। इनका संक्षिप्त विवरण इसी पुस्तक में परिशिष्ट के पश्चात दिया है देखें शीर्षक-'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का जिज्ञासुओं के प्रति व्यवहार का नमूना'।

२-सत्यार्थ प्रकाश के स्वाध्याय के सम्बन्ध में स्वामी जी के विज्ञापन (जो दयानन्द ग्रन्थ माला प्रथम भाग (सं१९२५ ई संकट १९८१ पृष्ट भूमिका १४, १५ पर छपा है) का ध्यान रखा गया है जनता के लाभार्थ यहां भी उद्धृत किया जाता है।

'सबको विदित हो कि जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूँ विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो जो मेरे बनाये सत्यार्थ प्रकाश वा संस्कार विधि आदि ग्रन्थों में गृह्य सूत्र वा मनु स्मृति आदि के वचन बहुत से लिखें हैं वह उन ग्रन्थों के मतों के जानने के लिये लिखे हैं। उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षी प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण करता हूं। क्योंकि वेद ईश्वर वाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है।

और जो ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थ अनुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूँ इसके आगे मृत पितरों के श्राद्ध तर्पण आदि न करने के बारे में। म० अ०

३-श्री पं० सातवलेकर जी का एक लेख अपने लिये और अन्य स्वाध्यायी सज्जनों के लिये उपयोगी समझ यहां भी दिया जाता है।

श्री पं० सातवलेकर जी अपनी (बड़ी) संध्यापंसना पुस्तक के पृ ६३, ६४ पर इस प्रकार लिखते हैं।

(१) भक्ति की अनियमितता होने से 'अंध विश्वास उत्पन्न होता है, और तर्क की अत्यंत वृद्धि होने से नास्तिकता आता है। दोनों घातक हैं इस लिये वैदिक धर्म में दोनों का समभाव रखा है। देखिये:—

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत।
मस्तिष्कादूर्ध्व: प्रेरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः॥

अथर्व १०-२-२६

अर्थ —(अस्य) इसका (मूर्धानं हृदयं च) मस्तिष्क और हृदय (सं) एक करके (सीव्य) सीकर (पवमानः) पवित्र (अथर्वा) स्थितप्रज्ञ योगी (शीर्षतः अधि) सिर के ऊपर (मस्तिष्कात) मस्तिष्क से (ऊर्ध्वः) परे (प्रेरयत) होता है।' अर्थात (१) मस्तिष्क को और हृदय को एक बना कर सम उन्नत रखना, (२) और पवित्र बन कर मस्तिष्क के परे अर्थात तर्क की भूमि से परे कूदना, ये दो उपदेश इस मन्त्र में अत्यंत महत्वपूर्ण आ गये हैं। किसी अन्य धर्म-ग्रन्थ में इस प्रकार इस बात को साफ नहीं किया है।

(४) जनता और विद्वानों से निवेदन है कि जहां तक मुझ से हो सका है कठिन और भ्रम जनक बातों को खोलने खुलवाने का

प्रयत्न किया है। परन्तु सत्यार्थ प्रकाश ऐसी गम्भीर और विस्तृत विषयक पुस्तक है कि पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी सरीखे विद्वान को भी इसे पूरा समझने के लिये कई बार पढ़ना पड़ा। मेरा यह प्रयत्न तुच्छसा है आप लोगों का कर्तव्य है कि समाज ग्रन्थों का नित्य स्वाध्याय करें और ऐसे प्रयत्न को आगे बढ़ावें।

साधारण तथा आर्य समाज की प्रकाशित सभी पुस्तकों में पुस्तक के अन्त में आर्य समाज के दश नियम छपे जाते हैं। हमारा यह प्रयत्न होगा कि यदि सम्भव हो सके उन्हीं आर्य समाज के दश नियमों के द्योतक वैदिक मन्त्रों को भी साथ दिया जाय।

पूर्वार्द्ध के शंका—समाधान के लिये पं० शिवकुमार जी शास्त्री महोपदेशक आ. प्र. निधि सभा पंजाब. तथा उत्तरार्द्ध के लिये पं० लक्ष्मण कुमार जी शास्त्री, पुरोहित आ० स० लोकाम कानपुर का मैं बड़ा आभारी हूँ।

विनीत:-मेहरसिंह यमतोल

१०० सी. तिमारपुर दिल्ली ६

११-१-६४

—: समर्पण :—

इस तुच्छ प्रयत्न को जगद्गुरु १०८ महर्षि दयानन्द जी सरस्वती जी के कर कमलों में बड़ी श्रद्धा और विनीत भाव से अर्पण करता हूँ जिनकी अपार कृपा से हमें विचार स्वतन्त्रता

का प्रसाद मिला है। एक स्वर से बोलो महर्षि दयानन्द ! तेरी जय हो।

विनीत:-मेहरसिंह यमतोल

* भजन *

है "प्रेम" की यही कामना,
यही एक उसकी है आरजू।
कि वह चन्द रोजह हयात को,
तेरी याद में ही गुजार दें॥

नोट:—यहां 'प्रेम' के स्थान में मेहर समझें।

महर्षि की जीवन झांकी

महर्षि की जीवनी में कहीं आया है कि पौराणिक लोग जौ जौ से हवन करते हैं ठीक नहीं जौ तो पशुओं का खाना है। यह पढ कर मैं ने पं० वीरसैन जी वेदाश्रमी इन्दौर निवासी को लिखा कि आपने मेरे संस्कार विधि के चूडाकर्म संस्कार में गेहूं के स्थानमें जौ के उल्लेख पर जौ की जो बड़ी प्रशंसा की है [संस्कार विधि प्रश्नोत्तरी पुस्तक पृष्ट २२] वह श्री स्वामी जी की इस सम्मति से मेल नहीं खाता उनका उत्तर दिनांक ४-१-६१ इस प्रकार है:—

"स्वामी जी के समय में और अब भी पौराणिक लोगकेवल जौ और तिलों से ही हवन करते थे, और कर रहे हैं।'

यज्ञ में उत्तमोत्तम पदार्थ डालने चाहिये इस दृष्टि से केवल

मात्र जौ तिलों का यज्ञ निषेध करने के लिये उन्होंने जनता को ध्यान दिलाया है। सर्वांश में स्वामी जी निषेध नहीं करते हैं।

संस्कार विधि में चार प्रकार के द्रव्यों में अन्न भी लिखा है। गेहूं चावल आदि शब्द लिखा है। आदि शब्द से अन्य अन्नों का ग्रहण होना है। यदि जौ पशु का ही भोजन होता तो उपनयन संस्कार में क्षत्रिय के लड़के को जौ से बनी पेय का विधान नहीं करते और चूड़ा कर्म में भी नापित को जौ देने का विधान नहीं करते। अतः उनके व्याख्यान का तात्पर्य ऐसा नहीं समझना चाहिये। म० स० ३०-१-६४

स्वामी जी के शास्त्रार्थों की सूची जो ज्ञानी पिण्डीदास जी प्रधान आर्य समाज लोह गढ़ अमृतसर की ओर से आर्य गजट दिनांक ६ फरवरी १९६४ में छपी इस प्रकार है।

संख्या	काल	स्थान	विपक्ष
१	१८६६ ई	अजमेर	पादरी ग्रेसाहब
२	१८६७	कर्णवास	पं. अम्बादत्त
३	,,	रामघाट	प. कृष्णानन्द
४	,,	कर्णवास	पं. हरीवलभ
५	,,	सोरों	,, अन्गद शास्त्री
६	१८६८	कोकोरी	,, उमादत्त
		अक्तूबर का मेला	
७	,,	फरुखाबाद	,, श्री गोपाल
८	१८६९ जून	,,	,, हलधर ओझा
९	,,	कन्नौज	,, हरीशंकर
१०	,,	जुलाई कानपुर	,, हलधर ओझा

संख्या	काल	स्थान	विपक्ष
११	,, नवम्बर	वाराणसी	पं. ताराचरण तर्क रत्न स्वा. विशुद्धा नन्द पं. बाल शास्त्री पं. राजाराम शास्त्री आदि
१२	१८७२	मिर्जापुर	पं. गोविन्द भट्ट, पं. जैधाराम
१३	,,	डमराओं	,, दुर्गादत्त
१४	,,	आराह	,, रुद्रदत्त, पं. चन्द्रदत्त
१५	सितम्बर	पटना	,, राम जीवन भट्ट, पं. रामअवतार
१६	१८७३ मार्च	कलकत्ता	,, हेमचन्द्र चक्रवती प. महेश-चन्द्र न्याय रत्न
१७	,, अप्रैल	हुगली	,, ताराचन्द्र तर्क रत्न
१८	,, मई	छपरा	,, जगन्नाथ
१९	,, अक्तूबर	कानपुर	,, गङ्गाधर
२०	,, नवम्बर	लखनऊ	,, गङ्गाधर
२१	१८७४ फरवरी	इलाहाबाद	,, काशीनाथ शास्त्री
२२	,, नवम्बर २५	सूरत	,, इच्छाराम शास्त्री
२३	,,	बड़ोदा	,, माधोराओ शास्त्री
२४	,,	राजकोट	,, महीधर
२५	१८७५ माच	बम्बई	,, खेमजी बाल जी शास्त्री
२६	,, जून	बम्बई	,, कंवल नयन आचार्य
२७	,,	बड़ोदा	,, यज्ञेश्वर
२८	१८७६ जून	बम्बई	,, रामलाल
२९	,, नवम्बर	मुरादाबाद	,, पादरी पारकर
३०	१८७७ मार्च	चान्दापुर मेला	पादरी स्काट काइसेम मौलवी मुहम्मद

३१	१८७७	सितम्बर	जालन्धर	मौलवी ऐहमद हुसैन
३२	१८७७	फरवरी	गुजरांवाला	ईसाईयों के साथ
३३	,,	नवम्बर	अजमेर	पादरी ग्रेसाहब
३४	१८७६	अगस्त	बदायूं	पं० राम प्रशाद
३५	,,	अगस्त	बरेली	पादरी सकाट
३६	१८८१	जून	ठबाबर	पादरी शुलब्रेड
३७	१८८२	सितम्बर	उदयपुर	मौलवी अब्दुल रहमान

ग्रन्थ रचयिता की जीवनी का कुछ परिचय देना आवश्यक समझ सत्यार्थ प्रकाश के लेखक श्री स्वामी दयानन्द जी के बारे में यहां कुछ पंक्तियां लिख दी हैं।

ऋषि दयानन्द के जीवन की मुख्य झांकीयां।

(१) जन्म स्थान तथा काल:-सं १८८१ वि १८२४ ई मोर्वी राज्य काठियावाड़ गुजरात प्रान्त के टंकारा नगर का जीबापुर मौहल्ला।

(२) शिवरात्रि व्रत, तथा ज्ञान अंकुर:-१४ वर्ष की आयु में व्रत की पालना में पिता जी तथा दूसरे भक्तों के सो जाने पर भी जाग्रत रहते हुवे शिव पर चढ़ाये गये नवेद्य को चूहों से खाये जाने और शिव मूर्ति की असमर्थता देख सच्चे शिवदर्शन की जिज्ञासा उत्पन्न हुई।

(३) वैराग्य:-अपनी बहिन और चाचा की मृत्यु से मृत्युविजय पाने की प्रबल आकांक्षा।

(४) कुल मर्यादानुसार जितनी शिक्षा दीक्षा चाहिये थी वह उन्होंने प्राप्त कर ली तो काशी जाकर पढ़ने की इच्छा प्रकट की

परन्तु यह बात उनके माता पिता जी को स्वीकार न थी इन्होने विवाह बन्धन में डालने की तैयारी की यह देख २२ वर्ष की आयु में मूलशंकर (जन्म नाम) घर से भाग गया किसी साधु के पता देने पर पिता जी ने सिद्धपुर के मेले पर उस समय ब्रह्मचारी वेष तथा 'शुद्ध चैतन्य' नामधारी अपने पुत्र को जा पकड़ा। बहुत फटकार की और अपने सिपाहियों की निगरानी में रक्खा। परन्तु शुद्ध चैतन्य रात के समय सिपाहियों को सोते देख वहां से भी भाग निकला। सिपाहियों ने जागने पर पीछा किया परन्तु निष्फल वापिस होना पड़ा।

(४) इसके पश्चात जहां जहां योगियों और विद्वानोंकी प्रसिद्धी सुनी बावजूद बे सरो सामानी के वहां वहां पहुँचे। इन विषम यात्राओं में इन तीन चीजों से उन्हें बड़ी सहायता मिली।

(१) ब्रह्मचर्य परिपुष्ट सयमी शरीर (२) एक मात्र लक्ष्य की प्राप्ति में ओत प्रोत शिव और दृढ़ सङ्कल्प मन (३) दृढ़ ईश्वर विश्वास।

(५) इन यात्राओं में बहुत कुछ पढ़ा। योग साधनाएं की नर्मदा तीर पर चानोद कार्णाली में पूर्णानन्द स्वामी से संन्यास ग्रहण किया और दयानन्द नाम रखवाया। ऐहमदाबाद के दुग्धेश्वर मन्दिर में शिवानन्द गिरि तथा ज्वालानन्द पुरि की शिक्षाओं से योग साधना में पर्याप्त उन्नति की इन यात्राओं में धर्म के नाम पर बहुधा पाखण्ड ही दीख पड़ा।

(६) आखिर कार्तिक स १९१७ में ३६ वर्ष की आयु पर गुरु विरजानन्द जी की कुटिया मथुरा में प्रवेश किया-तीन वर्ष की शिक्षा में वेद उपनिषद् अष्टाध्यायी निरुक्तादि ग्रन्थों का अध्ययन

परन्तु यह बात उनके माता पिता जी को स्वीकार न थी इन्होने विबाह बन्धन में डालने की तैयारी की यह देख २२ वर्ष की आयु में मूलशंकर (जन्म नाम) घर से भाग गया किसी साधु के पता देने पर पिता जी ने सिद्धपुर के मेले पर उस समय ब्रह्मचारी वेष तथा 'शुद्ध चैतन्य' नामधारी अपने पुत्र को जा पकड़ा। बहुत फटकार की और अपने सिपाहियों की निगरानी में रक्खा। परन्तु शुद्ध चैतन्य रात के समय सिपाहियों को सोते देख वहां से भी भाग निकला। सिपाहियों ने जागने पर पीछा किया परन्तु निष्फल वापिस होना पड़ा।

(४) इसके पश्चात जहां जहां योगियों और विद्वानोंकी प्रसिद्धी सुनी बावजूद वे सरो सामानी के वहां वहां पहुँचे। इन विषम यात्राओं में इन तीन चीजों से उन्हें बड़ी सहायता मिली।

(१) ब्रह्मचर्य परिपुष्ट सयमी शरीर (२) एक मात्र लक्ष्य की प्राप्ति में ओत प्रोत शिव और दृढ़ सङ्कल्प मन (३) दृढ़ ईश्वर विश्वास।

(५) इन यात्राओं में बहुत कुछ पढ़ा। योग साधनाएं की नर्मदा तीर पर चानोद कार्णाली में पूर्णानन्द स्वामी से संन्यास ग्रहण किया और दयानन्द नाम रखवाया। एहमदाबाद के दुग्धेश्वर मन्दिर में शिवानन्द गिरि तथा ज्वालानन्द पुरि की शिक्षाओं से योग साधना में पर्याप्त उन्नति की इन यात्राओं में धर्म के नाम पर बहुधा पाखण्ड ही दीख पड़ा।

(६) आखिर कार्तिक स १६१७ में ३६ वर्ष की आयु पर गुरु विरजानन्द जी की कुटिया मथुरा में प्रवेश किया-तीन वर्ष की शिक्षा में वेद उपनिषद् अष्टाध्यायी निरुक्तादि ग्रन्थो का अध्ययन

किया। दीक्षा के समय कुछ लौंग गुरु जी को भेंट किये। गुरु जी ने अस्वीकार कर कहा 'बेटा दयानन्द! मैंने तुम्हें इन तुच्छ लौंगों के लिये नहीं पढ़ाया। तुम्हें अनुभव ही है कि भारत में धर्म के नाम पर कितना पाखंड; अज्ञान, और दुराचार फैला हुवा है। इसके मिटाने के लिये मैंने तुम्हें सच्ची शिक्षा दी है। जाओ देशाटन कर सच्ची वेद विद्या का प्रचार करो' दयानन्द ने श्रद्धा पूर्वक सिर झुका दिया। गुरु जी ने आशीर्वाद के रुप में सिर और पीठ पर हाथ फेर दिया।

(७) प्रचार कार्य क्षेत्र में उतर कर उन्हें कई तरह के कष्ट सहने पड़े। गालियां ईंट पत्थर विष तक खाने पड़े। पर वाह रे दयानन्द! तू ने संन्यास धर्म को पूरा निभाया और विष देने वालों पर भी दया दिखाने में ही आनन्द का अनुभव किया। आखिरी विष के कारण ३० अक्तूबर १८८३ ई० को ५९ वर्ष की आयु में सायं छः बजे अजमेर में यह कहते हुवे शरीर त्याग दिया 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो! तैंने अजब लीला की'।

इस लीला को देखकर नास्तिक गुरुदत्त एम० ए० आस्तिक बन गया।

(८) इस लीला से पूर्व स्वामी जी ने अपने शिष्यों से कहा 'दरवाजे खोल दो और सब मेरे पिछली ओर खड़े हो जाओ' विचार शील पुरुष इससे यह संकेत लेते हैं:—

(क) वैदिक धर्म में प्रवेश के दरवाजे धनी, निर्धनी, स्त्री, पुरुष जन्म जात से छोटे बड़े, हिन्दु, मुसलमान, ईसाई आदि अपने देश वासियों तथा विदेशियों-सब के लिये खोल दो।

(ख) मेरे पीछे मेरा कार्य करने के लिये मेरे सच्चे अनुयाई

बनो और मेरे उपदेश और लेखानुसार आचरण करो।

(६) शायद उनको देह त्याग की निकटता का अन्दर से भान हो गया हो जो उन्होंने उदयपुर में २० फरवरी १८८८ अपना अंतिम स्वीकार पत्र (वसीयत नामा) रजिस्टरी करा अपनी सारी सम्पत्ति परोपकारिणी सभा के नाम लिखदी। देश भ्रमण कर निम्न स्थानों पर आर्य समाज स्थापित की।

(१) बम्बई (सं० १६३२) १० अप्रैल १८७५ ई. (२) पूना १६-१०-१८७५ ई० (३) पंजाब में लाहौर, २४ जून १८७७ (४) अमृतसर (५) गुरुदास पुर (६) जालन्धर (७) फीरोजपुर (८) रावलपिंडी (६) जेहलम (१०) गुजरात (११) वजीराबाद (१२) गुजरांवाला (१३) मुलतान (१४) रुड़की (१५) मेरठ (१६) दिल्ली, तत् पश्चात (१७) देहरादून (१८) मुरादाबाद (१६) शाहजहांनपुर (२०) कानपुर (२१) दानापुर (२२) फिरोजाबाद (२३) काशी (२४) लखनऊ (२५) मैनपुरी (२६) आगरा (२७) जयपुर (२८) अजमेर (२६) ब्यावर (३०) उदयपुर।

(१०) महर्षि की पुस्तक रचनाः—

१-संध्या २—पाखन्ड खण्डन ३-अद्वैत मत खण्डन ४-वेद विरुद्ध मत खण्डन ५-शिक्षापत्री ध्वान्त निवारण ६-सत्यार्थ प्रकाश ७-आर्याभिविनय ८-संस्कार विधि ६-वेदान्तिध्वान्त निवारण १०-ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ११-आर्योद्देश्य रत्न माला १२-ऋग्वेद भाष्य [१०५८६ में ७ ५६११ मन्त्र] १३ यजुर्वेद भाष्य १४-भ्रान्ति निवारण १५-पञ्च महायज्ञ विधि १६-वेदान्त प्रकाश [१६ भाग] १७ भ्रमोच्छेदन १८-गोकरुणा निधि १६-स्वमन्तव्यामन्तव्य २०-अष्टाध्याई भाष्य २१-नियमोपानयम

आर्य समाज के पहले नियम जो बम्बई में बने थे २८ थे। जिनका संशोधन लाहोर में स्वामी जी की उपस्थिति में १८७७३ में हुआ। २२-स्वीकार पत्र २३- काशी शास्त्रार्थ २४- प्रतिमा पूजन विचार २५- सत्य धर्म विचार २६- सप्तासप्त विवेक २७--व्यवहार भानु २८- पत्र और विज्ञापन— सं० २००२ वि० (श्री पं० भगवत्दत्त जी बी०ए० रिसर्च स्कालर द्वारा। ——

अशुद्धि- शुद्धिपत्र

नोट—लग मात्रों या अनुस्वार (बिन्दी) आदि की अशुद्धियाँ तो पाठक समझ ही जायेंगे मैंने उनको छोड़ दिया है।

	अशुद्ध	शुद्ध
प्रथम पृष्ठ भूमिका १४	संकति	संवत्
पृष्ठ १ अन्तिम लाइन	मोम का ओम	ओम का मोम्
,, १ लाइन १०	३ प्रतिशंका	समाधान
,, २ लाइन ८ नीचे से	प्रैरियत	अर्थात् प्रेरित
,, १७ नोट का आरंभ	पराणिक	पौराणिक
,, ,,	अंत उत्तर कुछ नहीं आया	उत्तर परिशिष्ट ५ में देखें
,, २६ नीचे से चौथी लाईन	अर्थापत्रि	अर्थापत्ति
,, ४१ लाईन ११	सन्धाय	सन्यास
,, ४३ ,, ९	को	का
,, ४६ ,, ४	सची	जची
,, ४६ ,, १४	वह	यह
,, ,, ,, १६		ब्रह्मा से पहले (जिसे) चाहिए
,, ५० ,, १६	का	कि
,, ५१ ,, ३ नीचे से		सब काम उसके (अन्दर) ही होते हैं
,, ५२		शंका ७० उत्तर परिशिष्ट ६ में देखें
,, ५२ ,, १५	भी	की

	अशुद्ध	शुद्ध
पृष्ठ ५२	अंक	अङ्क
,, ५६ आखरी पककति	कि से पहले की चाहिये	
,, ५६ पक्कति ६	वेद शास्त्री	वेद श्रमी
,, ५६ ,, ३ (नीचे से) आखरी शब्द 'उत्तर' के आगे नहीं चाहिये		
,, ,, ,, ५	शां	सांख्य
,, ,, प्रतिशंका की पक्कति ५	आर्थिक	पार्थिव
,, ,, १५,१६ दो बार छप गई हैं		
,, ,, आखरी और इसके आगे पृष्ट ६० पर प्रतिशंका ७७		
,, ,,	दो बारा छप गई है	
,, ६० ३ नीचे से	कसे	कैसे
,, ६३ ,, ११ गिणति के शून्य नौ हैं दश चाहिये		
,, ६८ ,, ५ नीचे से, आखरी शब्द, कुछ) 'गुत' चाहिये		
,, ७० ,, पहली	पृष्ट १००	पृष्ट १७०
,, ,, ,, चास		चाहा
पृष्ट ८१ पंकति ८	(किचा करियति)	क्रिऋचा करिष्यति
,, ८५ ,, ८	समानाथक	समानार्थक
,, ,, ,, १०	ज्ञावन	ज्ञानेन
,, ,, ,, १५	युत	युक्त
,, ८६ ,, ६	होते	होती
,, ,, ,, १४	समानाथक	समानार्थक
,, ८६ ,, ४	(नीचे से) दर	दया
,, ,, ,, ३	नीचे से) प्रतिकुल	प्रतिकूल
,, ६० ,,	पहली	आरम्भ में (पैरा २) चाहिये

(शेष अन्त के पृष्ठ पर देखें)

सत्यार्थ प्रकाश–शंका समाधान

(पूर्वार्द्ध)

प्रथम समुल्लास

१-(क) पृष्ट ३-सर्व वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान तथा निज नाम ओ३म् कहा है ।

शंका–(क)-ऐसा मानने से क्या लाभ है ? क्योंकि सिर्फ ओ३म् कहने का कोई लाभ नहीं, इसके नौ अर्थ लिखे हैं। एक समय में एक ही अर्थ का विचार हो सकता है। हां प्राणायाम में केवल ओ३मू लाभदायक हो सकता है व्याहृतियां नहीं।

(ख) पृष्ट १४ पर हरिओम् को पौराणिक बता कर निषेध किया सो ठीक नहीं, क्योंकि ओम् ओम् का शीघ्र जाप करने से मों मों बन जाता है।

१ समाधान–(क)-एक शब्द के अनेक अर्थ होना एक डंठल पर अनेक फल लगने के समान है। इस लिए ओम् शब्द का एक बार उच्चारण करने के पश्चात् फिर अर्थों की लड़ी ही ध्यान में आयेगी। बार बार शब्दों के उच्चारण न करने से पर्याप्त लाभ है।

(ख) हरिओम् उच्चारण के लिए जो युक्ति आपने दी है वह ठीक नहीं। क्योंकि ओम् का विधिवत् उच्चारण ओम् की लुप्त क्रिया के साथ है। इस प्रकार मोम् का ओम् नहीं हो सकता।

द्वितीय समुल्लास

२ शंका—पृष्ट १५ एकादशी, त्रयोदशी को गर्भाधान का निषेध किया गया है। सम्भव है चन्द्रमा का प्रभाव रज-वीर्य पर पड़ता हो। पर वह प्रभाव प्रत्येक स्त्री–पुरुष की प्रकृति (सत्व, रज, तम) अनुसार पृथक् पृथक् होगा। इसके स्पष्टिकरण की आवश्यकता है।

२ समाधान— जैसे शीत उष्ण ऋतुओं का प्रभाव किंचित न्यून अधिक से सब प्राणिमात्र पर होता है उसी प्रकार त्रयोदशी, एकादशी में चन्द्र का प्रभाव भी प्रत्येक गर्भ पर सम्भव है। (Safe side गर्भाधान न करने में ही है)।

३ शंका—पृष्ट १५ गर्भ स्थिति के पश्चात एक वर्ष तक संयुक्त न हों ऐसा लिखा है-मेरी शंका-जब तक बच्चा दूध पीता है और जब तक स्त्री दो बारा रज स्वला न हो तब तक का निषेध चाहिये था। ३ समाधान—

दो बारा रजस्वला होने का सामर्थ्य सब देवियों का समान नहीं होता। किन्हीं का दूसरे मास से ही रजोदर्शन आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार के कई उदाहरण हमारे सामने हैं। अतः निर्धारित मर्यादा ही ठीक है।

३ प्रति शंका—माना कि दोबारा रजस्वला होने का समय सब स्त्रियों का समान नहीं होता तो किसी बात को विचारने के लिए अपवाद को छोड़ कर साधारण अवस्था को ही रखना चाहिये। आपने साधारण अवस्था प्रसूत के दो मास तक की लेली और गर्भ स्थिति की बात भी लिख दी इस से तो मेरी

शंका को पुष्टि मिलती है। स्वामी जी ने गर्भ स्थिति के पश्चात एक वर्ष पर्यन्त संयुक्त न हों, लिख कर आप वाली स्थिति को पुष्टि दी तो मेरी शंका ज्यों की त्यों रही, हर वर्ष बच्चा जनने की बनी रही यह किसी तरह भी अभीष्ट नहीं है। संस्कार विधि में अन्न-प्राशन छठे महीने में लिखा है। कुछ समय अन्न और दूध दोनों चलते रहेंगे, इस तरह एक वर्ष बीत जायेगा फिर कुछ समय प्रसूता को अपनी ताकत बढ़ाने के लिए चाहिये। अर्थात् दो वर्ष से पहले दूसरा गर्भाधान नहीं होगा, अतः मेरी पूर्व लिखी दोनों शर्तों को पुनः विचार कर उत्तर देने की कृपा करें।

३ प्रति शंका—ऋषि का आशय यह है कि गर्भाधान के समय स्त्री-पुरुष सर्वथा स्वस्थ और प्रसन्न चित्त हों। उनका मेल उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही हो। अब यह स्थिति आने में जितना समय अपेक्षित हो उतना समय दोनों को ब्रह्म-चर्य पूर्वक रहना चाहिये इसके लिए समय चाहे एक वर्ष हो चाहे दो वर्ष। ऋषि ने बच्चा होने के पश्चात बच्चे के पोषण के लिये जो चर्चा लिखी है, उससे एक वर्ष का समय सर्वथा संक्षिप्त प्रतीत होता है। परन्तु मुख्य बात समय की नहीं उस योग्यता की है जो सन्तान उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है। ऋषि के निम्न शब्द ध्यान देने योग्य हैं 'जब दोनों के शरीर में आरोग्य प्रस-न्नता, किसी प्रकार का शोक न हो'।

४ शंका—प्रसूता का दूध छः दिन पिलावें फिर धाई पिलाया करे।

शंका धाई भी तो राष्ट्र की सदस्या है। उसके अपने बच्चे का उस दूध पर अधिकार है। उसे वंचित करना ठीक नहीं! यदि धाई रखने का नियम माना जावे तो धाई को भी धाई रखनी होगी।

परमेश्वर ने माता के स्तनों में उसके अपने बच्चे के लिए अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार पैदा किया है। वही हर एक बच्चे के लिए लाभकारी हो सकता है। हां रोग दशा में विकल्प हो सकता है।

(ख) धायी की अपने वंशानुसार अपनी परम्परायें उसके दिमाग में होंगी उत्तम वर्गीय बच्चे पर उसका अच्छा असर नहीं पड़ेगा। 'दूध छत्रायी का पीना यहां बेकार नहीं' ऐसा वह नहीं कर सकेगा।

(ग) दूध बन्द करने से तीन महीनों में स्त्री फिर रजस्वला हो जायेगी और पैरा ३ के अनुसार एक वर्ष की अवधि समाप्त हो जावेगी, भोग करने से स्त्री फिर गर्भवती होकर हर वरयाई हो जायेगी और दश सन्तान दश वर्ष में ही हो जायेगी, गृहस्थ के शेष पन्द्रह वर्ष क्या करेंगे ?

संस्कार चन्द्रिका पुस्तक में जात कर्म की व्याख्या में यजु० १७/८७ का हवाला देकर लिखा है कि बच्चे के लिए अपनी माता के समान संसार में कोई और दूध नहीं।

४ समाधान—धायी इस प्रकार की माताएं होनी चाहिये, जिनके बच्चे बड़े २ हो गए हों। और अब प्रसव न होता हो। देवियों के सन्तान उत्पन्न होने के १५,२०, वर्ष पश्चात तक भी अच्छी खुराक और स्नेह से दूध उतरता रहता है। धायी उत्तम विचार और उच्च आचार की ही होनी चाहिए। होती भी थीं। पन्ना धायी का उदाहरण इतिहास में प्रसिद्ध है।

जब अपने दूध की याद दिलाने के लिए सात दिन के दूध

की भी याद दिला सकती है। प्रभु ने माता के स्तनों में दूध निस्सन्देह बच्चे के लिए ही दिया है। साथ ही उसे यह बुद्धि भी दी है कि बच्चे के स्वास्थ को हानि न पहुँचाते हुए अपने स्वास्थ की रक्षा कर सके अन्यथा दूध तो एक बार प्रसूता होने के पश्चात् ५० वर्ष की आयु तक लगातार आ सकता है। तो क्या दूध की सार्थकता के लिए बड़े २ बच्चों को भी माता का दूध पिलाते ही रहना चाहिए ?

ग-गर्भाधान के लिए जब एक अवधि नियत करदी तो शीघ्र गर्भ स्थिति का प्रश्न ही नहीं उठता। माता के दूध से अभिप्राय केवल जिसने जन्म दिया उससे ही नहीं, अपितु उस जाति से है। जैसे मनुष्य के बच्चे के लिए गौ आदि पशुओं की अपेक्षा स्त्री का दूध अधिक सुपाच्य तथा पोषक होगा। अतः वेद का उपदेश ठीक ही है।

प्रतिशंका (४) आपने यहां भी असाधारण अवस्था (सन्तान उत्पन्न के—१५-२० वर्ष पर्यन्त अच्छी खुराक और स्नेह से दूध आता रहता है) को ही सन्मुख रख उत्तर दिया है। इस में शक नहीं कि धायी का विधान सुश्रुत शारीरिक स्थान अध्याय १० में है। परन्तु जैसी धाई आप लिखते हैं मिलना दुर्लभ है न ही सर्व साधारण की सामर्थ्य है। क्या वेद में कहीं ऐसी धायी का विधान है कि धायी अवश्य रक्खे। यदि नहीं तो धायी वाली बात सर्व मान्य नहीं हो सकती। संस्कारचन्द्रिका वालों ने तो यजु० १७। ८७ का हवाला देकर माता के दूध को ही सर्व श्रेष्ठ माना है। सीधे तौर पर धायी का निषेध नहीं किया। श्री पं लक्ष्मण कुमार शास्त्री जो आपके उपदेशक विद्यालय लाहौर के स्नातक हैं और इस समय

आर्यसमाज शीशामऊ कानपुर के पुरोहित हैं धायी वाली बात को नहीं मानते और भी कई ऐसे सज्जन हैं। आपने माता की व्याख्या जननी के अतिरिक्त जाति भी कर दी। देखें—अन्य विद्वान् इस पर क्या कहते हैं:—संस्कार विधि जात कर्म में जहां प्रसूता के दायें बायें स्तनों से दूध पिलाने का विधान है, धाई का कोई जि़कर नहीं। (२) आपने पन्ना धाई का ज़िकर किया। साहित्य में जोधपुर के राणा यशवन्तसिंह का भी जिकर है। अपनी माता से पूछने पर कि मुझमें बुजदिली कहां से आई, जो मैं रण से भाग आया ? उसकी माता उत्तर देती है, जब तू दो वर्ष का था, मैं रसोईघर में थी तू भूख के मारे रोये जा रहा था मैंने अपने गर्म स्तनों से दूध पिलाना उचित न समझा दासी को कहा कि 'तुम्हें जरा बाहर खेल में लगावे। अपने स्तन ठंडे होने पर दासी को बुलाया ताकि तुम्हें दूध पिला दूं'। उसने कहा कि उसने अपना दूध पिला दिया है। मैंने तुम्हें फौरन उलटा लिटा कर दासी का दूध बाहर निकाल दिया फिर भी दो चार बून्दें रह गई होंगी उन्ही का यह प्रभाव हुवा है।' इन घटनाओं से मेरा विचार है कि धाई बच्चों को खिलाया करती थी अपना दूध नहीं पिलाती थीं। पन्ना की अपने बच्चे की कुर्बानी स्वामी भक्ति तथा राज भक्ति का सबूत है। निष्कर्ष यह है कि वेद का कहना कि अपनी माता के तुल्य दूसरे का दूध नहीं हो सकता सर्वोपरि माननीय है और धाई का दूध पिलाना आपत्काल का धर्म है। वेद मंत्र इस प्रकार है यजु० १७। ८७, ऋ १४. २. १४।

स वः प्रजां जनयद् वक्षसमभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः।
आत्मन्वत्युर्वराः गमागत तस्यां नरो वपत बीजमस्याम॥

उत्तरः—धाई रखना अनिवार्य नहीं है। उपर्युक्त गुण वाली धाई मिले और रखने की क्षमता भी हो तो धाई रक्खें। अन्यथा उन्हें अपनी स्थिति के अनुसार गौ आदि के दूध में उत्तम औषध मिला कर बच्चे का पोषण करना चाहिये। लक्ष्य यह है कि ऋषि के शब्द—"जिस से सब सन्तान उत्तम बल पराक्रम युक्त, दीर्घायु, धार्मिक हों।"

(५) पृ० १६ शूद्र वर्णस्थ बच्चे बिना उपनयन गुरुकुल में भेजे जावें।

शंका—यज्ञोपवीत या तो सब का हो या किसी का न हो। मनु के श्लोक 'जन्मनणा जायते शूद्रः' की ओर ध्यान दें।

समाधान—उपनयन क्या है? शिक्षण संस्था में भेजने की तैयारी। इस समय भी पढ़े लिखे माता पिता अपने बच्चे को कुछ अक्षर ज्ञान करा कर स्कूल में भेजते है और बिना पढ़े लिखों के बालक घर पर बिना कुछ सीखे ही स्कूल में प्रविष्ट होते हैं। सामान्यतया घर सीखे हुवे बालक शीघ्र पढ़ने लगते हैं। अपवाद स्वरूप कोई मूर्ख माता पिता का बालक भी बहुत उन्नत होने लगता है अतः जो पढ़ा सकता है वह खुद पढ़ा कर विद्यालय में भेजे और अपठितों के लिये विवशता है ठीक यही बात उपनयन के लिये भी है।

प्रतिशंका—५ उपनयन का अर्थ सामीप्य प्राप्त करना वा होना (आचार्य का) ऐसा संस्कार विधि में लिखा यह भी लिखा कि जब बालक का शरीर और बुद्धि ऐसी हो कि अब यह पढ़ने योग्य हुवा, तभी यज्ञोपवीत करा देवें—यज्ञोपवीत आचार्य ने घर आकर कराना है—पढ़े लिखे माता पिता भी घर में पढ़ाने से पहिले यज्ञोपवीत करावेंगे और अनपढ़ शूद्र किसी

गुरू या आचार्य को पढ़ाई के लिये बच्चा सौंपने से पहिले यह संस्कार क्यों न करावें। इस बात का स्पष्ट उत्तर आना चाहिये।

प्रतिशंका ५ का समाधान—संस्कार तो होना ही है शूद्र के बच्चे की परीक्षा के पश्चात् संस्कार की शर्त इस लिये लिखी कि सामान्यतया मातः पिता के संस्कार ही बच्चे में जाते हैं। बच्चा यदि असाधरण है तो उसे उन्नति का अवसर अवश्य मिलना चाहिये। सब काम सब के समान ही हैं। इस में कोई छल नहीं। काय योग्यता अनुसार होना चाहिये ताकि समय शक्ति और श्रम का ठीक उपयोग हो सके।

(६) पृ० १६—जिस के साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उसके साथ वैसी ही पूर्ण करनी।

शंका मेरा विचार है जो प्रतिज्ञा किसी आततांई ने अपने जोर से कराई हो उसका पूरा करना जरूरी नहीं—ऐसी प्रतिज्ञा का पूरा न करना अधर्म नहीं।

उत्तर—सामान्य कर्त्तव्य के उपदेश में सज्जनों के परस्पर व्यवहार का उपदेश ही वर्णित है। आततांई और मायावियों के साथ किस प्रकार व्यवहार करें। यह राजनीति के उपदेश प्रसग में द्रष्टव्य है।

तृतीय समुल्लास

(७) पृष्ठ २१—बच्चे को पाठशाला भेजने की आयु ८ वर्ष लिखी है।

शंका: संस्कार विधि में वर्णानुसार (जन्म) अलग अलग लिखा है।

उत्तरः—भाव यह है कि जब बच्चा कुछ समझने योग्य हो जावे तो गुरु के पास भेज दिया जावे यह शक्ति पाँच वर्ष से पूर्व तो हो नहीं सकती ? आगे के वर्षों में जब यह क्षमता, और योग्यता बच्चे में आवे इसे प्रविष्ट करावे।

८ पृष्ठ २१:—पाठशाला में ५ वर्ष का भी विरोधी लिङ्ग का बच्चा नहीं जा सके।

शंकाः—संस्कार विधि में भिक्षाचरण लिखा है। तब घरों में जाने से इस नियम के उद्देश्य का भंग होगा।

उत्तरः—यह प्रवेश निषेध सम्पर्क बुद्धि की आशंका से है विरोधी लिङ्ग के दर्शन मात्र को भी वर्जन वहां अभिप्रेत नहीं है। न उतने से कोई हानि ही सम्भव है जिसके लिये वैसा विधान किया जाता।

६ पृष्ठ २४:—मनु का श्लोक देकर 'अपां समीपे' संध्या करना लिखा है।

शंकाः—अनुभव यह है कि तालाबों नदियों के किनारे मच्छर बहुत सताते हैं। मेरा विचार यह भी है कि प्रारम्भ में संध्या का कोई विधान नहीं था। अथर्व ४-११-१२ में प्रातः, सायं, मध्याह्न तीनों काल में ईश्वर स्तुति करना लिखा है। इसी से तीन काल की संध्या चली। आर्य समाजी मध्याह्न में कुछ नहीं करते तो यह इस वेद मंत्र की अवहेलना ही है।

शंका ६ का उत्तरः—चित्त के समाहित होने की दृष्टि से ऐसा विधान किया है। यदि कहीं विरोधी स्थिति उपस्थित हो वहां कोई दूसरा स्थान चुन लें वैसे मच्छर आदि की विद्यमानता सब जलीय स्थानों में नहीं होती। जहां वैसा न हो वहां चित्त बहुत प्रसन्न और शान्त रहता है यह हमारा अनुभव है।

संध्या दो काल की ही है।

प्रतिशंका:—संध्या दो काल की ही मान कर मैं ने अथर्व ४-११-१२ की ओर ध्यान दिला कर पूछा था कि मध्याह्न में कोई ईश्वर स्तुति का विधान न होने से इस मन्त्र के इतने भाग की अवहेलना है इसका उत्तर आप ने कुछ नहीं दिया। ऐसी अवस्था में मध्याह्न का भोजन करने से पहिले 'अन्नपते: अन्नस्य नो धेहि' वाला मन्त्र पढ़ लेने से इस मन्त्र की आज्ञा पूर्ति समझ लेता हूँ श्री पं० बुद्ध देव जी ने अपनी पुस्तक 'पञ्च महायज्ञ प्रकाश' में बलि वैश्व देव को यह मान्य दिया है। आप का क्या विचार है ?

उत्तर:-ईश्वर का ध्यान तो वैसे प्रत्येक समय बना रहना चाहिये।

नोट:—संध्या विधि का 'सत्यार्थ प्रकाश' संस्कारविधि तथा पञ्च महायज्ञ विधि ग्रन्थों में कुछ न कुछ भेद है इस भिन्नता को दूर करके समता लाने के लिये आर्य जगत में पञ्च महायज्ञ विधि को प्रामाणिक माना जाता है अत: इस पुस्तक पर मेरा लेख इस प्रश्नोत्तरी के परिशिष्ट में देखने की कृपा करें।

१० पृष्ठ २३ पर तीनों वेदों के पढ़ने के लिये ३६ वर्ष लिखे परन्तु पृष्ठ ४३:—पर चारों वेदों के लिये २१ वर्ष लिखे।

उत्तर:—वेद के अध्ययन में काल भेद ग्राहक शक्ति के आधार पर है। तीक्ष्ण बुद्धि वाला शीघ्र और स्थूल वाला कुछ अधिक समय लेगा।

११ पृष्ठ २५—होम के बिना पाप होता है क्योंकि जितना मनुष्य शरीर से दुर्गन्ध निकलता है प्राणियों को दुःख प्राप्त होता है उतना ही पाप उस मनुष्य को लगेगा। शंका--यदि ऐसा है तो सन्यासियों को होम करने से क्यों छूट दी. मेरा विचार है कि दुर्गन्ध को दूर करने का उपाय प्रभु ने मक्खियों कुक्कटों कुत्तों

सूर्य वायु और वर्षा द्वारा किया हुवा है अतः हवन न कर
वाले को पाप नहीं, करने वाले को पुण्य होगा क्यों
इसका दूसरा नाम यज्ञ है और यज्ञ में भावना परोपकार की
रखी गई है वैसे यह भी देखो कि दैनिक अग्निहोत्र के लि
कोई वेद मंत्र का आदेश प्रमाण रूप में नहीं दिया।

समाधान ११:— सन्यासीतो निरन्तर प्रत्येक कार्य प्रजा
भलाई के लिये ही करता है। दूसरे प्रायः भ्रमण में रहने
कारण यज्ञ की सामग्री सम्भालने में भी बड़ी असुविधा हो
अत: उसे वायु शोधन निमित्त १६ आहुतियां वाले दैनिक अग्नि
होत्र से छुट्टी दे दी। जहां तक यज्ञ का अध्यात्मिक रूप है उस
तो सन्यासी अनुरूप है। इस लिये सन्यासी लाभ अधिक औ
हानिकम पहुंचाने के कारण पाप का भागी नहीं होता औ
इस दृष्टि से उसे इस कर्तव्य से मुक्त भी किया। प्रमाण में मन
'सायं सायं नो' इत्यादि मन्त्र पञ्च महायज्ञ विधि में देखिये

प्रतिशंका ११ होम न करने वाले को पाप नहीं लगता प्रत्यु
करने वाले को पुण्य होता है? हेतु देकर मैंने लिखा था इस प
आपकी सम्मति चाहिये। प्रमाण के लिए आपने पञ्चमहायज्ञ
विधि देखने को कहा, वहां अथर्व १९.५५ के मंत्र ३ और ४ त
दिये हैं उनमें होम करने का कोई शब्द नहीं अग्नि और ईंध
शब्द तो है। जिससे रोटी पकाना हिम से बचना आदि सि
हुंगा कृपया कोई ऐसे वेद मन्त्र ढूँढिये जिनमें दो काल होम
करने की आज्ञा हो और उसका न करना पाप माना जाता हो

समाधान:— होम न करने वाला पाप इस लिए करत
है कि वह अपने शरीर से निकलने वाले मलों के द्वारा जल-
वायु को अशुद्ध कर रहा है दूसरों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाता
है। पुण्य इसलिये नहीं कि वह १६ आहुतियों से उतनी ही शुद्धि

कर रहा है जितनी अशुद्धि उसने फैलाई है। कोई अपने घर में झाडू लगाये तो पड़ोसियों पर क्या एहसान ?

'सायं सायं गृहपति' पञ्च महायज्ञ विधि में दिये मंत्र साधारण चुल्हे आदि द्वारा अग्नि जलाने के नहीं। अग्नि का विशेषण सौमनस्य स्पष्ट बता रहा है कि यह सुख शान्ति देने वाली अग्नि कोई और ही अग्नि है जिसे हम यज्ञ कहते है दूसरा प्रमाण भी लीजिये, नामनाम्ना जोहवीतिपुरा- सूर्यात् इसमें जोहवीति शब्द स्पष्ट है। और भी देखे ऋक- १०-५३-४,५ तथा ऋक ८-१०२-१६,२०।

१२ पृष्ट २६ पर मनु ३-१ का श्लोक देकर तीन वेद लिखे। क्या मनु के समय चार वेद नहीं थे ? फिर ऋग्वेद सब से बड़ा है उसके पढ़ने के लिये भी १२ वर्ष ही रखे।

उत्तर:—मन्त्र रचना प्रकार से वेद की तीन प्रक्रियां हैं अर्थात चारों वेदों में यजुष्, ऋक और साम तीन प्रकार के मन्त्र हैं इसी दृष्टि से उन चार को तीन कह दिया जाता है। वास्तव में वेद चार ही हैं। ऋग्वेद बहुत बड़ा अवश्य है किन्तु ऋक का अभ्यास करने से सामदेव का भी अभ्यास हो जाता है इस लिये साम को समय अल्प लगने के कारण परिणाम ३६ वर्ष ठीक ही निकलता है सामवेद मे ७० ही मन्त्र ऐसे बचते हैं जो ऋग्वेद में नहीं आते-शेष सब मन्त्र ऋग्वेद में आ जाते हैं।

प्रतिशंका:—ऋक् और साम में एक ही मन्त्रों को समय की दृष्टि से हुवा तभी समझा जा सकता है जब कि साम में आये ऋक के मन्त्रों का वही अर्थ करना हो परन्तु आर्य समाज वेद में पुनरुक्ति दोष से बचने के लिये यह धारणा बनाये हुवे है कि किन्ही वेद मन्त्रों का एक से अधिक स्थानो में आने से प्रकरणानुसार अर्थों में भेद हो जाता है। यदि आप इस बात पर

विचार करेंगे तो मेरी शंका बनी रहेगी।

उत्तर:—हमारे मत में एक ही मन्त्र के आधि भौतिक आधि दैविक और अध्यात्मिक अर्थ हो सकते हैं फिर यह क्या कोई कम वचत की बात है कि शब्द रूप डंण्ठल तो एक ही है हां उस पर फल पृथक पृथक लगते हैं इसी से ऋक और साम के मन्त्रों की यथार्थता हो जायेगी।

१३ पृष्ट २६—और २७ पर छान्दोग्योपनिषद् पद की व्याख्या करते हुये २४ वर्ष के ब्रह्मचर्य वाले की ७०,८० वर्ष और ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य वाले की ४०० वर्ष तक की आयु लिखी है यह नहीं 'जीवेम' शरदः शतम् और न ही 'त्रायुषं जमदग्नेः' से मिलते हे इन अन्तरो का क्या आधार है।

समाधान १३:—सामान्य नियम की दृष्टि से यह आयु का अनुमान है। विशेष अवस्था में योगाभ्यास आदि के द्वारा यह बढ़ भी सकती है। और विशेष कमर्थल उदय के कारण अल्प समय में समाप्त भी हो सकती है जैसे ऋषि के जीवन का उदाहरण है। ※

१४ पृष्ट २७ सुश्रुत के हवाले से ४० वर्ष की आयु पर परिहानि मानते हुवे ४० वर्ष आयु के विवाह को उत्तम परन्तु ४८ वर्ष की आयु के विवाह को उत्तमोत्तम लिखा वह समझ में नहीं आया कि ८ वर्ष की परिहानि वह न्यून पदवी के स्थान में उत्तमोतम पदवी कैसे प्राप्त कर सकता है? यह भी ध्यान में

※ नोटः—पुनः विचार पर मुझे इसका समाधान यह सूझता है कि इस समय की अवस्थानुसार (माता पिता ब्रह्मचारी (ऋतुगामी) गृहस्थी नहीं) २४ वर्ष की आयु में विवाहित पुरुष की आयु ७०-८० वर्ष तक की होगी, ४८ वर्ष की आयु में विवाह करने वाले पुरुष की आयु ३०० वर्ष और विवाह न करने वाले ब्रह्मचारी की आयु ४०० वर्ष तक पहुँच सकती है।

रखें कि संस्कार विधि वेदारम्भ में अथर्व ११-५-६ का हवाला देकर ४० पर गृहस्थ लिखा वहां ४८ नहीं।

उत्तर:—परिहानी का अभिप्राय नुकसान या घाटा यहां नहीं अपितु वीर्य की उस अवस्था के द्योतन के लिये जो थाल के भरने के कारण ऊपर बहता है। अत; ४८ वर्ष में यह स्थिति होगी कि मूलपात्र ज्यों का त्यों रहेगा और फालतू ऊपर बचे हुवे तत्व से ही सन्तान उत्पन्न हो सकेगी इस लिये शरीर को बिलकुल भी हानि न पहुंचने से और परिपक्व वीर्य से उत्तम सन्तान होने से उसे उत्तमोत्तम कहा गया है।

१४ ख पृष्ठ २८,२६ मनु २-२८ का प्रमाण देकर लिखा है कि इन साधनों से ब्राह्मण का शरीर बनता है। शका-यज्ञादि कर्मों का प्रभाव आत्मा पर पड़ता है शरीर तो जो बनना था बन चुका फिर स्वामी जो पृष्ठ ७६ चतुर्थ समुल्लास में निरुक्त ३-४ के प्रमाण से पुत्र की उत्पत्ति अङ्ग अङ्ग और हृदय से मानते हैं यह रज वीय ही तो हुआ।

उत्तर—'ब्राह्मीयं क्रियते तनु' का भाव यही कि ऐसा शरीर कि जिस में ब्राह्मण आत्मा निवास करता है। शरीर रजस और वीर्य से ही बनता है। संस्कारों का प्रभाव आत्मा पर होता है।

नोट—आप मेरा view point मान गये महति कृपा।

(१५) पृष्ठ ३० मनु २-१६८ सान्वयः का अर्थ पुत्र पौत्रादि करते हैं। उनका भी शूद्र होना लिखते हैं। परन्तु देखा जाता है कि जगत में मूर्खों के पुत्र विद्वान और विद्वानों के मूर्ख निकल आते हैं। अन्वयः के अर्थ पीछे चलने वाले सङ्गी साथी भी हो सकते हैं ?

समाधानः—लोग कर्म काण्ड का दृढ़ता से पालन करें इस लिये भयानक रूप में इस बात का वर्णन कर दिया गया है।

१६ पृष्ठ ३१ मनु २-११ के आधार पर 'नास्तको वेद

निन्दकः' कह कर जाति, पंक्ति देश से बाहर निकालना लिख दिया है।

शंका—यह नीति संध्या में लिखे 'वो जम्भे दध्मः' की नीति के विरुद्ध है' इसी नीति से पाकिस्तान बना कपिल और बुद्ध को आर्य हिन्दुओं ने नास्तिक माना परन्तु मनु के इस श्लोक पर अमल नहीं किया। पता नहीं स्वामी जी ने इसे क्यों उद्धृत कर दिया है? यह माननीय न होना चाहिये।

उत्तरः—मर्यादा रखने के लिये कुछ दण्ड विधान तो करना ही पड़ता है। दूसरे निकालना श्लोक में द्विजों के काम से है। जाति पंक्ति अथवा देश से नहीं। बुद्ध आस्तिक थे। देखिये पं० धर्मदेव जी की पुस्तक 'वेदों का यथार्थ स्वरूप।' बुद्ध धर्म के सिद्धान्त अवश्य नास्तिकता के हैं जो बुद्ध के १००० वर्ष बाद बने।

प्रति शंकाः—जब आप मानते हैं कि मनु के अनुसार नास्तिक को द्विज कर्म काण्ड से बहिष्कार है न कि जाति पंक्ति, अथवा देश से तो प्रश्न उठता है कि स्वामी जी ने ऐसा क्यों लिख दिया? और इसके दुष्प्रभाव को कैसे दूर किया जावे।

उत्तरः—मनु के श्लोक का अर्थ स्वामी जी का मन्तव्य नहीं माना जा सकता। श्री स्वामी जी का मन्तव्य केवल उतना है कि द्विजों की आस्था और श्रद्धा वेद में होनी चाहिये।

जैसे श्री स्वामी जी ने 'प्रेत' शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिये 'गुरो प्रेतस्य' श्लोक उद्धृत किया है। इसमें श्री स्वामी जी के काम की वस्तु 'प्रेत' शब्द है।

१७ पृष्ठ ५४—आप्तोपदेश (आप्त-जिसको पृथवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान हो। शंका—इतना ज्ञान किसी एक मनुष्य में होना असम्भव है इस कसौटी से स्वामी दयानन्द

भी को भी आप्त नहीं कह सकते उनका उत्तर ज्ञानी अज्ञानी दोनों हूं यदि ऐसा कोई एक पुरुष हो सकता तो परमेश्वर सृष्टि के आदि में द्वारा वेद ज्ञानही एक ऋषि द्वारा दे देता। कुछ भी हो उसका उपदेश वेद का दरजा नहीं पा सकता।

उत्तर:—पूर्ण आप्त तो भगवान ही है योगी भी प्रभु के सान्निध्य से जिस जिस तत्व को जानना चाहता है जान लेता है। वह सर्वज्ञ नहीं तत्वज्ञ है। मनुष्यों में ऐसे तत्वज्ञानी को ही आप्त कहा जायगा।

१८ पृष्ठ ४० पठन पाठन विधि शंका—द्वितीय समुल्लास के पृष्ट १६ पर अन्य देशीय भाषाओं का अक्षराभ्यास कराना निष्फल रह जाता है क्योंकि इस सारी पठनपाठन विधि में बिदेशीय भाषाओं का लेश मात्र भी जिकर नहीं।

समाधान १८:—आवश्यक ज्ञान ईश्वर जीव प्रकृति है। वह मूल ज्ञान पूर्ण-रूप से किसी भाषा में जानना चाहिये। भाषा यूं तो उस ज्ञान के परिधान (पोशाक) मात्र हैं। ज्ञान अपने आप विद्यमान है तो प्रथम कृत अक्षराभ्यास ही उस भाषा में गति कर देवेगा। इस लिये पठन पाठन विधि में उसके समावेश की आवश्यकता ही नहीं है।

चतुर्थ सम्मुलास

१६ पृष्ट ४५ असपिण्ड का अर्थ स्वामी जी ने माता की छे पीढियां छोड़ना लिखा है (इसका अर्थ माता के पति की छे पीढियां मुझे बताया गया है)।

शंका:—(क) छे पीढियों का विचार कहां से लिया।

(ख) पौराणिक नानकी जात ही छुडा देते हैं क्या

स्वामी जी के 'दुहिता' शब्द को ध्यान में रखते हुवे इससे बढ़िया विधान है ?

(ग) स्वामी जी के विधान से मासी की सन्तान के साथ विवाह जायज होगा।

(घ) गोत्र क्या होता है ? पिता का गोत्र छोड़ना लिखा है क्या भूआ के बच्चों के साथ विवाह जायज होगा ? ❀

२० पृष्ठ ४८,४६ पर स्वामी जी ने निकट देशीय विवाह के दोष और दूरस्थ के गुण दिखाये हैं हर एक बात के दो पहलू होते हैं मैं दूसरा पहलू भी दिखाता हूं।

निकट देशस्थ विवाह के गुण—

(क) ऐसे कार्यों में जहां अधिक man power जन संख्या की सहायता की आवश्यकता हो जैसे खेती बाड़ी की फसल काटना वहां एक दूसरे का सहकारी होना।

(ख) बीमारी आदि के दिनों में एक परिवार का दूसरे परिवार की सेवा करना।

(ग) एक परिवार के कहीं बाहर जाने पर दूसरे परिवार का उनके घर और कारोबार की अस्थाई रूप से संभाल और देख रेख।

(घ) एक का कारोबार ढीला पड़ जाने पर दोनों का मिल जाना या और प्रकार से सहायता कर सकना।

❀ पौराणिक विधि (ग) (घ) विवाहों को जायज नहीं समझती वह विधान बढ़िया ठहरता है। और स्वामी जी का घटिया। उत्तर कुछ नहीं मिला।

(ङ) निकट होने से जामाता के आचार व्यवहार पर सास ससुर का moral effect अच्छा प्रभाव पड़ते रहना।

दूरस्थ विवाह के दोष—

(क) जल वायु नामुआफिक हुवा तो कन्या का सदा रोगी रहना और धन का व्यय।

(ख) दुःख सुख में आने जाने पर कारोबार को हानि तथा मार्ग व्यय का अधिक होना।

(ग) दूरस्थ देश की सौगातें लाने से अधिक व्यय। अपने देश में तो चीजें एक जैसी ही होती हैं।

(घ) दूरस्थ कन्या के साथ बदसलूकी हो तो उसका मैके वालों को ज्ञान न हो कर कन्या का अन्दर ही अन्दर घुल कर मर जाना।

(ङ) रीति रिवाज और बोल चाल में अन्तर आ जाने से रहन सहन में कठिनाई।

समाधान २०—निकट विवाह के गुण जो दिखलाई पड़ते हैं उनका निर्वाह तो सद्भावना के सुरक्षित रहने पर ही सम्भव है। किन्तु होता यह है कि निकट होने से बहुत शीघ्र ही एक दूसरे की पारस्परिक व्यवहार में शिकायतें पैदा हो जाती हैं और मनो मालिन्य उत्पन्न हो जाता है। दूसरे यह सभी सहयोग जो आपने गिनाये हैं परिवार के दूसरे व्यक्तियों और पड़ोसियों से भी लिये जा सकते हैं।

दूरस्थ के दोष—

(क) अपवाद रूप में स्वास्थ्य के लिये जल वायु की प्रति-

कृतता सम्भव तो है पर ऐसी स्थिति तो सब स्थानों पर हो सकती है।

(ख) ऐसे अवसर कभी कभी ही आते हैं।

(ग) यदि वस्तु उपादेय और लाभप्रद है तो व्यय सहन करना ही चाहिये।

(घ) पत्रादि के द्वारा सूचना तो मिल ही सकती है।

(ङ) यह सब भिन्नताएं दूर हों इसी लिये तो विवाह आदि सम्बन्धों का दूर होने का विधान किया है ऋषि ने उपक्रम में इस गुण का वर्णन भी किया है।

२१ पृष्ठ ४६ मनु ३/८ और ३/६ को उद्धृत करके ठीक नाम न रखने वाली कन्याओं के साथ विवाह का निशेध बताया।

शंका—(क) ऐसे पुरुषों के बारे में क्यों न लिखा।

(ख) नाम तो बदला जा सकता है ऐसा रिवाज भी है यह कारण निषेध के लिये वजनी नहीं।

समाधान २१—अभिप्राय केवल इतना है कि नाम सार्थक और सुन्दर होने चाहियें। नामों से पारिवारिक योग्यता और व्यावहारिक शिष्टता का पता चलता है। भोड़े नाम रखने वाले निश्चित ही विचारों की दृष्टि से निचले स्तर के होंगे। किन्तु इस सब का सार इतना ही है कि स्त्री पुरुषों के नाम सार्थक और अच्छे होने चाहियें।

२२ पृष्ठ ५० मनु ३/१० कन्या के गुणवति होने को दर्शाता है वर का नहीं। इसी वास्ते लड़के अप्सरा जैसी कन्या चाहते हैं

और इसी वास्ते लड़कों की चढ़ मची हुई है। भूल जाते हैं कि हितो पदेश में 'भार्या रूपवती शत्रु' लिखा है।

उत्तर—वर वधू का शरीर के स्वास्थ्य और सौन्दर्य के समानता होने का निर्देश कई स्थलों पर ऋषि ने स्वयं किया है। उस समानता ही में आनन्द है।

२३ पृष्ठ ५०—५१ पर जो टिप्पणी गौरी और रोहिणी शब्दों पर स्वामी जी ने मखौल रूप में की है वह मुझे नहीं भाई क्योंकि पाराशरी और शीघ्रबोध का अभिप्राय इन शब्दों से नाम का नहीं भावना का है। यह भावना ही थी जिसने एक मन्दिर के निकट नङ्गी खड़ी कन्या के आगे स्वामी जी का मस्तिष्क झुकवा दियो विवाह से पहिले सब बहन भाई ही समझे जाते हैं।

समाधान—श्री स्वामी जी ने अनर्गल बात होने के कारण इस प्रकार की टिप्पणी की है। रोहिणी आदि नाम में कोई भावना ऐसी ऊंची नहीं है जिसकी ओर आपने संकेत किया है। *

२४ पृष्ठ ५५—यह वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की १६ वें और पुरुषों की २५ वें वर्ष की परीक्षा में नियत होनी चाहिये।

शंका—उचित तो यही है परन्तु प० बुद्धदेव जी विद्यालंकार गुरुकुल में प्रवेश के समय इस चुनाव को मानते हैं और कई विद्वान कालेज में प्रवेश के समय पर। सार्वदेशिक सभा को चाहिये कि इस में एक मत करावें।

उत्तर--व्यवस्था वही है जो ऋषि ने स्वीकार किया है। किसी व्यक्ति विशेष की कुछ भी मान्यता क्यों न रहे।

---

* मेरा मतलब पौराणिक भावना रोहिणी आदि को देवी मानने का था नाम का नहीं।

२५ पृष्ठ ५६ क्षत्रिय के कर्मों की व्याख्या में अपनी ओर से लिख दिया जो भागने से यदि शत्रु को धोखा देने से अपनी जीत होती हो तो ऐसा ही करना।

शंका—स्वामी जी ने यह शब्द अपनी ओर से लिख दिये हैं गीता में नहीं जो संस्कृत नहीं पढ़े उनके लिये यह कितना भ्रान्ति मूलक है। Government diplomacy की लोग निन्दा करते हैं वहां तो शब्दों का ही हेर फेर होता है यहां तो साफ शब्दों में धोखा देना लिख दिया इसी तरह पृष्ठ ५७ पर कुसीद का शब्दार्थ न कर सूद की राशि अपनी ओर से नियत कर दी यहां क्षत्रियों को धोखे की छुट्टी देदी और ११ वें समुल्लास में पृ १८६ पर श्री शंकराचार्य जी का अन्दर और बाहर का मत एक न होने को वेद हितार्थ कुछ अच्छा मान लिया। गोया यहां ब्राह्मणों को latitude दे दिया ऐसी अवस्था में वैश्य भी सोचेंगे कि हम ही दण्डनीय क्यों हों जो कहते हैं बिना झूठ के व्यापार चलताही नहीं।

समाधान २५-इस बात को समझने के लिये पहिले शत्रु की परिभाषा समझनी चाहिये हमारे वैदिक धर्म की दृष्टि से शत्रु का वाचक अधार्मिक और पापी है। और अधर्म और पाप के विनाश के लिये ही हम इन से युद्ध करते हैं। अतः हमारा लक्ष्य तो धर्म रक्षा है। बलवान पापी को पराजय कराने के लिये यदि किसी चातुरी से काम ले लिया जावे तो कोई अनुचित न होगा।

'कुसीद' की मात्रा ऋषि ने दूसरे अर्थशास्त्र के ग्रन्थों के आधार पर लिखी है इसमें कोई अनौचित्य नहीं।

प्रत्येक वर्ग को अपने अपने व्यवहार में शुद्धि बर्तनी चाहिये

यह अनेक स्थलों पर आदेश है। किसी को भी कुमार्ग में चलने की सम्मति और प्रेरणा नहीं है।

२६ पृष्ठ ५७—विद्या और धर्म प्रचार का कार्य ब्राह्मण को देना।

शंका—विद्या दो प्रकार की होती है। परा और अपरा। अपरा विद्या तो अपने अपने वर्ण का ही सिखा सकता है। ब्राह्मण क्षेत्रिय और वैश्य को क्रियात्मक रूप में उनकी विद्या नहीं सिखा सकेगा।

समाधान—जहां तक शब्दार्थ का सम्बन्ध है अध्यापक अर्थ शास्त्र आदि सब कुछ पढ़ाते ही हैं। यह आवश्यक नहीं है कि व्यापार करने के पश्चात ही पढ़ाने को समर्थ हो।

२७ पृष्ठ ५७—शूद्र को सेवा का अधिकार इस लिये है कि विचार रहित (मूर्ख) होने से विज्ञान के काम कुछ नहीं कर सकता किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है।

शंका—विज्ञान शब्द का प्रयोग यहां किस अर्थ में है। कारीगर जैसे सुनार लोहार तरखान मैहमार अनेक काम किस वर्ण में गिने जायेंगे? मनु और स्वामी जी इस पर चुप हैं।

समाधान २७—(क) शूद्र विद्या रहित होने के कारण कोई उच्च बौद्धिक कार्य करने में सफल न हो सकेगा। वह शरीर के बल से ही दूसरे वर्णों को सहयोग दे सकेगा। यहां विद्या सम्बन्धी कार्यों के लिये 'विज्ञान' शब्द आया है।

(ख) इन सभी कामों में शिक्षा और बौद्धिक आवश्यकता है अतः इन सब को वैश्य कोटि में लाना चाहिये।

नोटः—सार्वदेशिक सभा को चाहिये कि आज के सब धन्धे डाक्टर वकील इन्जीनीयर मिस्त्री गायक नृत्यकार फोटोग्राफर,

कुश्ती आदि आदि सब का विचार कर श्रेणि-वर्णवार बांटे। मेहरसिंह

२८ पृष्ठ ५७—विवाह के लक्षण।

शंका—मनु के श्लोक ३/२१ की व्याख्या में स्वामी जी के लेख का क्या आधार है? शब्दार्थ लें तो आर्य श्रेष्ठ को कहते हैं परन्तु इस विवाह को निकृष्ट गिना है। धर्म की वृद्धि अर्थ विवाह को 'प्राजापत्य' कह कर मध्यम माना जब कि धर्म का दरजा सब से ऊपर है।

समाधान २८--श्री स्वामी जी की इन विवाहों की व्याख्या का आधार मनु है। मनु ने सब विवाहों का पृथक पृथक लक्षण किया है ऋषि ने उन्हीं का भाव दे दिया शब्द आर्ष है आर्य नहीं। ऋषि मुनियों के जो विवाह क्रम कभी रहा होगा उसी का उल्लेख उतम विवाह ब्राह्म ही हो सकता है क्यों कि विवाह की श्रेष्ठता के लिये मुख्यतया स्वभाव की अनुकूलता होनी चाहिये।

२९ पृष्ट ५८ (क) जिस दिन कन्या रजस्वला होकर शुद्ध हो जावे तब वेदिऔर मण्डप रच अनेक सुगन्धित द्रव्य और घृतादि का होम तथा अनेक विद्वान पुरुष स्त्रियों का यथा योग्य सत्कार करे।

शंका—इसका प्रयोजन?

२९—(ख) पश्चात जिस दिन ऋतुदान देना योग्य समझें उस दिन संस्कार विधि पुस्तक विधि के अनुसार सब कर्म करके मध्यरात्रि वा दश बजे अति प्रसन्नता से सब के सामने पाणिग्रहण पूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके एकान्त सेवन करें।

शंका—१ पहिली पंक्ति में दिन के स्थान में रात्रि लिखना था।
२ संस्कार विधि अनुसार तच्चक्षुर्देवहितं मंत्र से रात्रि के समय सूर्य दर्शन कैसे होगा?

३-यहां पर ऋतुदान वाले दिन विवाह करना लिखा परन्तु संस्कार विधि उत्तरार्ध विधि की समाप्ति पर तीन रात्रि भूमि पर बिछौना कर ब्रह्मचर्य व्रत लिखा है और चौथे दिन गर्भाधान लिखा है। इस परस्पर विरोध को हटाईये।

उत्तर २६—(क) लड़की के विवाह योग्य हो जाने की इसे सूचना समझिये।

(ख) १-यहां दिन से अभिप्रेत तिथि है। दिन का सम्बन्ध वैवाहिक कृत्य की तैयारी से भी है तथा दिन शब्द सामान्यतया काल बोधक जो समय के दो रूप, दिन और रात्रि के रूप में व्यवहृत होता है किसी भी एक तिथि वा तारीख दिन और रात दोनों का समावेश है।

२-सूर्य दर्शन का समय दिन ही है और ध्रुव दर्शन का समय रात्रि।

३-पालनीय मुख्य विधि संस्कार विधि की है क्योंकि उसमें सब क्रियाओं का सांगोपांग वर्णन है। यहां तो संक्षेप से विषय का दिग्दर्शन मात्र है।

३० पृष्ठ ५६—प्रसूता और बच्चे के स्नान के पश्चात नाड़ छेदन लिखा।

शंका—नाड़ छेदन पहिले फिर बच्चे को अलग कर दोनों को अलग अलग स्नान कराना ठीक होगा?

उत्तर—निःसन्देह यहां का पाठ कुछ आगे पीछे हो गया है। नाड़ छेदन स्नान से पूर्व ही होना चाहिये। *

३१ पृष्ठ ६० स्त्री आदि सब मनुष्यों से ग्रहण करना।

शंका—क्या गुण कर्म स्वभाव को छोड़ना होगा? यदि नहीं तो मनु ने यह श्लोक किस लिये लिखा? इसका उत्तर नहीं

* सार्वदेशिक सभा को इधर ध्यान देना चाहिये।

आया पर मैं अब समझता हूँ कि श्री स्वामी जी के दृष्टि कोण से इसका अभिप्राय यह होगा कि वर वधू गुण कर्म स्वभावानुसार एक वर्ण के ही होने चाहियें। माता पिताओं के वर्ण भले ही उनके वर्ण से न मिलते हों। (मेहर सिंह)

३२ पृष्ठ ६० मनु ४/१३८, १३६ के अर्थ में जो दूसरे का हित कारक हो, वह बुरा भी माने तो भी कहे बिना न रहे।

शंका—यह लेख किन शब्दों का अर्थ है ?

उत्तर—इस अर्थ के वाचक शब्द इन दोनों श्लोकों में नहीं हैं। विषय से सम्बन्ध के कारण यह बात अलग से लिखी गई है और इसी बात की पुष्टि के लिये 'पुरुषाः बहवो राजन्' महाभारत का श्लोक उद्धृत किया। यह उपदेश इसी श्लोक के आधार पर है। ❀

३३ पृष्ठ ६३ मनु ३-८४ पाकशाला से अग्नि बाहर निकाल आहुति देना लिखा।

शंका—इसका लाभ क्या ? मैं तो समझता हूँ कि बाहर की अग्नि प्रज्वलित न होने से आहुति धूँआ और सड़ान्द पैदा करेगी।

उत्तर—दहकते हुवे अंगारे अथवा कोयले जो आहुत द्रव्य को भस्म कर सकें ऐसों पर ही आहुति देना चाहिये। नीचे उद्धृत श्लोक के अर्थानुसार आहुति चूल्हे में भी दी जा सकती है।

३४ पृष्ठ ६४—इन भागों को जो कोई अतिथि होवे उसे खिलादे।

❀ यह महाभारत का श्लोक इसके पीछे दिया है पूर्व देते तो शंका न उठती।

शंका—ऐसा लिखना अतिथि की मान प्रतिष्ठा के विरुद्ध होगा।

उत्तर—मेरी सम्मति में यहां अतिथि से अभिप्राय साधारण आगन्तुक से है।

३५ पृष्ठ ६४ बलि वैश्व-हवन करने का प्रयोजन यह है कि पाकशालास्थित वायु का शुद्ध होना और जो अदृष्ट अज्ञात जीवों की हत्या होती है उसका प्रत्युपकार करना है।

शंका—रोटी आदि जलाने से वायु शुद्ध नहीं प्रत्युत दुर्गन्ध होगी-जिन जीवों की हत्या हुई उनको इस कर्म से क्या लाभ और उपकार ?

उत्तर—अन्न के साथ घी शक्कर मिला हुआ हो तो सुगन्धि ही होगी दुर्गन्ध नहीं। जितने भाग के जलने से हानि हो सकती थी उसका निषेध पहले ही कर दिया गया है।

उपकार मृत जीवों का नहीं हो सकता। किन्तु जीवित उन जैसे अन्य जीवों का हो सकता है।

३६ पृष्ठ ७०-७१ मनु का श्लोक ९/१७६

शंका—श्लोक में स्त्री का जिकर है। पुरुष के और किसी वर्ण का नहीं। स्वामी जी ने अपने विचार जोड़ दिये हैं। परन्तु ऐसा लिख देना क्या उचित था ?

उत्तर—अर्थापत्ति नियम की मर्यादा से पुरुष का ग्रहण भी वहीं हो जायगा। इसमें कोई अनौचित्य नहीं है।

३७ पृष्ठ ७१- पुनर्विवाह का पहला दोष।

स्त्री पुरुष में प्रेम की न्यूनता क्योंकि जब चाहे तब स्त्री

पुरुष को और पुरुष स्त्री को छोड़ के दूसरेके साथ सम्बन्ध करले।

शंका—यह बात यदि कुछ वजन रखती है तो नियोग पर भी वैसे ही लागू होगी।

समाधान ३७- विवाह करने वाले स्त्री पुरुष आयु भर के लिये एक दूसरे से बन्ध जाते हैं। किन्तु नियुक्त पुरुष तो केवल सन्तति समुत्पादन के अतिरिक्त किसी भी काल में सहयोग नहीं होता। अतः यहां यह प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

प्रतिशंका ३७— श्री स्वामी जी ने यह धारणा ली है कि यदि पुनर्विवाह की इजाजत हो तो स्त्री पुरुष में प्रेम कम हो जावेगा मेरा कहना था कि यदि विवाह गुण कर्म स्वभाव की परीक्षा करके होगा तो प्रेम कम होने की सम्भावना नहीं। और यदि कोई स्त्री पुरुष दूसरे विवाह की लालसा से प्रेम कम करते हैं तो नियोग में एक नहीं अनेक स्त्री पुरुषों से सम्भोग की बात अधिक रुचिकर होगी मैं यहां सिर्फ दलील की बात ले रहा हूँ।

प्रत्युत्तर—पुनर्विवाह में गुण कर्म स्वभावानुसार मेल मिलना बहुत कठिन है। यह तो विपद्ग्रस्त स्त्री पुरुषों के आग की बात है वह भी शूद्रों में चल सकता है द्विजों में नहीं।

३८ पृष्ठ ७१— नियोग एक स्त्री पुरुष का दो पुत्रों तक लिखा है।

शंका—पुत्र पैदा करना अपने आधीन नहीं यदि कन्याएं पैदा हों तो क्या सम्बन्ध टूट जावेगा या बना रहेगा जब तक कि दो पुत्र हो जावें

उत्तर—(१) शास्त्रोल्लिखित मर्यादा का पालन करने से

यथेष्ठ सन्तान प्राप्ति की सम्भावना है उल्लेख संसार में उत्सर्ग का होता है। यों अपवाद तो चलते रहते हैं।

(२) नियोग एक केवल आपद्धर्म है। इस लिये विवाह के साथ उसकी तुलना ही व्यर्थ है।

प्रतिशंका ३८—(१) आपका उत्तर मेरी शंका निवारण नहीं करेगा क्योंकि आगे चल कर मनु ९/८१ में आये शब्द एकादशोस्त्रि जननी. का अर्थ करते हुवे स्वामी जी लिखते हैं जब जब हो तब- तब कन्या ही होवें पुत्र न हो तो ग्यारह वष तक (इन्तज़ार करके) दूसरी स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लेवे ऐसी अवस्था में शंका समाधान यह होगा कि सम्बन्ध छोड़ दूसरी स्त्री से नियोग करे क्या आप सहमत हैं ?

(२) विवाह और नियोग की तुलना में स्वामी जी ने समानता और विभिन्नता के नियम लिखे हैं आप कृपया इसको मेरी शंका ४१ से मिला कर पढ़िये वहां भी आपने मेरी लिखी बाद-फेरग वाली बात पर ध्यान नहीं दिया।

उत्तर— इस अवधि में भी विवाहिता स्त्री के परित्याग की कोई बात नहीं विवाहिता पूर्ववत घर में रहेगी। नियुक्त के साथ सम्बन्ध तो केवल सन्तान प्राप्ति का है।

३९ पृष्ट ७१ परन्तु वह नियुक्त स्त्री दो तीन वर्ष उन लड़के की पालना कर नियुक्त पुरुष को दे देवे।

शंका- जब तक बालक ८ वर्ष का होकर गुरुकुल न चला जावे पिता के लिये पालन दुष्कर होगा। अतः स्त्री की आवश्यकता

बनी रहेगी । फिर यदि दोनों में से एक मर जावे तो कठिनाई और भी बढ़ जायगी अतः Comradeship system जारी करना अधिक लाभ दायक होगा ।

उत्तर— यहां भी विशेष परिस्थिति होने के कारण अन्य पिताओं की अपेक्षा नियुक्त पिता को यह कठिनाई सहनी ही पड़ेगी । पालन के लिये वह अपने परिवार की किसी देवी से सहायता ले सकता है ।

४० पृष्ठ ७१-७२ इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु दशास्यां पुत्राणां देहि पतिमेकादशं कृधि' ऋ १०-८५-४५ ।

शंका – (क) इस मंत्र में पुत्राणां' का शब्द से वेद को पुत्र पैदा करना ही अभीष्ट है पुत्री नहीं ?

(ख) इस मन्त्र में कहीं विधवा शब्द नहीं आया। स्वामी जी ने अर्थ करते समय यह शब्द किस आधार पर रखा है ?

उत्तर— (क) वेद में पुत्र शब्द सन्तान मात्र का बोधक है।

(ख) यह प्रसंग विधवा सधवा का नहीं । अपितु कितनी संख्या में सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं वह है । नियोग से सन्तान उत्पन्न करना मर्यादा के अन्दर है यह पहले ही सिद्ध किया जा चुका है । इस समय तो केवल संख्या का निर्देश किया है ।

प्रतिशंका—(क) आपने वेद में आये पुत्र' शब्द का अर्थ सन्तान किया है परन्तु मनु ९. ८१ के आधार पर स्वामी जी ने

केवल कन्याओं की उत्पत्ति को मान्य नहीं दिया देखें प्रतिशंका १८ (१)।

उत्तर— संसार का क्रम न केवल लड़कियों से चल सकता है और न केवल लड़कों से वह तो दोनों से चलेगा। अतः सन्तान में लड़का और लड़की दोनों ही आगये। लड़के का अधिकता से वर्णन इसलिये है कि वह पिता का उत्तराधिकारी होता है।

४१ पृ० ७२ नियोग में दो-दो बच्चों की संख्या रक्खी है परन्तु दश पैदा करने की आज्ञा दे दी। इस का परिणाम यह होगा कि एक स्त्री पांच पुरुषों से और एक पुरुष पांच स्त्रीयो से सम्भोग करेगा परन्तु आगे पृष्ठ ७४ पर ऋ० १०-८५-४४ की व्याख्या करते हुवे ग्यारह पति लिख दिये यह तो और भी गजब की बात है वेश्यागमन न करने की एक दलील यह भी है कि अलग अलग धातु और रज वालों के इस प्रकार भोग से भयानक रोग (बाद-फरंग) पैदा होते हैं। इसलिये एक स्त्री पुरुष का समागम ही उचित है विकल्प न्यूनतम होना चाहिये।

उत्तर— यह आपद्धर्म केवल व्यभिचार और भ्रूणहत्या को रोकने के लिये है। कहीं नहीं लिखा कि अवश्य करें अपितु स्पष्ट निषेध है कि न रहा जावे तो—

प्रतिशंका:- आप का उत्तर "कहीं नहीं लिखा कि नियोग अवश्य करे" यह बात तो विवाह पर भी वैसे ही घटती है जो सारी आयु ब्रह्मचारी रह सकता है रहे प्रश्न तो यह है कि जब विवाह और नियोग के नियम बना दिये तो हमें देखना है यह नियम कहाँ तक ठीक हैं अतः प्रश्न को दृष्टिगोचर रखते हुवे उत्तर देने की कृपा करें।

उत्तरः- यथावत ब्रह्मचर्य का पालन पूर्ण योगी के बिना नहीं हो सकता। अतः बीच का मार्ग विवाह ही प्रचलित है। नियोग में यह स्थिति नहीं है।

४२ पृष्ठ ७२ नियोग में वीर्य उत्तम वर्ण का होना लिखा विवाह में समान वर्ण- यह भेद क्यों ?

उत्तरः- विवाह होने पर पति-पत्नि को मिल कर जीवन की नौका चलानी थी इसलिये मनोवृत्ति की अनुकूलता के लिये वर्ण की समानता का निर्देश किया। नियोग में यह स्थिति नहीं है।

प्रतिशंकाः- महाराज जहां तक सन्तान के वर्ण का सम्बन्ध है स्थिति एक जैसी है आगे चलकर यज्ञोपवीत आदि में इसी स्थिति को देखना है -ब्राह्मण पिता, क्षत्रिया माता की सन्तान का वर्ण क्या होगा ? (न तीतर न बटेर)

उत्तरः- प्रतिशंका ४२ (क) पिता के वर्ण के अनुसार बच्चे के संस्कार होंगे ख प्रधानता बीज की माननीय है भूमि की नहीं।

इस पर मेरा नोट (क) यजु ३०/६ 'नृताय सूतं' के पदार्थ में स्वामी जी लिखते हैं 'नाचने के लिये 'सूतम्' क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुवे सूत को उत्पन्न कीजिये। पाठक देखें। कहां रही पिता के वर्ण के अनुसार बच्चे के संस्कार ! क्षत्रिय का काम कहीं नाचना नहीं लिखा।

(ख) कुन्ति क्षत्रिया का पुत्र कर्ण-ब्राह्मण के वीर्य से था। कैसा शूरवीर क्षत्रिय था। पिता (ब्राह्मण वीर्य) की प्रधानता के दावे को झुठलाता है। अतः विवाह का समान वर्ण का नियम

माननीय ठहरता है। नियोग में वर्णित वीर्य की प्रधानता वाला नियम खण्डनीय है।

४३ पृष्ठ ७३ ऋ० १०-४०-२ इसमें 'विधवेव देवरम्' का अर्थ नियोग में लगाया है, और साथ ही कहते हैं कि देश विदेश में स्त्री पुरुष संग में रहें।

शंका—इससे पूर्व लिख आये हैं कि नियुक्त स्त्री पुरुष अपने अपने घरों में रहेंगे सिवाय ऋतुदान की रात्रि को जब देश में यह व्यवस्था है तो विदेश में दोनों इकट्ठे कैसे जा सकते हैं? इस लिये देवर के अर्थ पुनर्विवाह में लगाना ठीक है।

'देवरः कस्मात् द्वितीयः वरः उच्यते' इस का अर्थ नियोग में लगाने की कोई औचित्य (Justification) प्रतीत नहीं होता दूसरावर दूसरा पति सीधी बात है।

पृष्ठ ७४ अथर्व १४-२-१८ की व्याख्या में देवर को दुःख न देने वाली' ऐसा लिखा इस का अर्थ तो पति का छोटा भाई ही समझा जायेगा इससे बढ़कर और लीजिये। खोज करने वालों ने संस्कार चन्द्रिका में लिखा है कि वस्तुतः पाठ देव कामा' है (दिव्य गुणों की इच्छा वाला) इस खोज ने तो सारी नियोग की बात ही मिटा दी।

उत्तर ४३—इस स्थल की भाषा को ध्यान से देखा नहीं गया वहां लिखा है 'जैसे देवर की विधवा और विवाहिता स्त्री अपने पति को ·· इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेश में स्त्री पुरुष संग में ही रहें और विवाहित पति के समान नियुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तान उत्पन्न करले यहां नियुक्त पति का सम्बन्ध केवल सन्तान उत्पत्ति से ही है।

देवरः कस्मात् यह व्युत्पत्ति प्राचीन आचार्य यास्क की है ऋषि की नहीं। जब नियोग का औचित्य सिद्ध हो गया तो वैसा अर्थ करने में कोई बाधा नहीं। वेद में पाठ दोनों ही हैं और दोनों का अपना महत्व है।

'देवरः कस्मात्' का अथ करते हुवे जो द्वितीय वर अर्थ किया गया है वह ऋषि की कोई अपनी कल्पना नहीं है वेद व्याख्याता यास्काचार्य ने यह अर्थ किया है वही अर्थ संगत होता है। कानून की भाषा में सामान्य शिष्टाचार की परवाह न करके जीवन की उलझनों के समाधान की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है विवाह के पश्चात मृत्यु की घटनाएं घटती रहती है नपुंसकत्वादि व्याधियां भी हो जाती हैं ऐसी अवस्था में जो संयम से न रह सकें उनके लिये कोई व्यवस्था होनी चाहिये। इस नियोग व्यवस्था से ऐसे संकटापन्न लोगों का त्राण किया गया है।

प्रतिशंका ४३ में ने इस स्थल को ध्यान से पढ़कर ही आपत्ति उठाई थी कि स्वामी जी के पूर्व लेख से नियुक्त स्त्री पुरुष का बाहर इकट्ठे जाना सिद्ध नहीं होता देखें प्रकरण-पुनर्विवाह और नियोग में क्या भेद है ? [पहिला] विधवा [नियुक्त] स्त्री उसी विवाहित पति के घर में रहती है [नियुक्त पति के घर या साथ नहीं] तीसरा नियुक्त स्त्री पुरुष का कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता [पांचवां] नियुक्त स्त्री पुरुष अपने अपने घर घर का काम किया करते हैं। इन पर विचार करके उत्तर देने की कृपा करें।

आपने लिखा है कि वेद में पाठ दोनों ही हैं इसका तात्पर्य मैं यह समझता हूँ कि किसी प्रेस के वेद में देवृ कामा' और किस प्रेस के वेद में देव कामा है। अब प्रश्न यह

हो जायेगा कि कौनसा माननीय है । संस्कार चन्द्रिका के लिखने वालों की बात मान कर नियोग को अमान्य ठहरायें और विधवा स्त्री और स्त्रीमृत पुरुष का पुनर्विवाह हो, चुनांचि गुरुकुल कांगड़ी की छपी पुस्तक अथर्व वेद सूक्तियों में "अवश्यं युवति नियमाना जीवां मृतेभ्य परिणीयमानाम् १८-३-३ के अर्थ में लिखा मैं ने देख लिया है जो इन विधवाओं का विवाह हो सकता है"।

उत्तर प्रतिशंका ४३- स्पष्ट उल्लेख है कि नियोग में स्त्री पुरुष केवल सन्तान के लिये परस्पर मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कोई सम्बन्ध नहीं अतः साथ-साथ रहने की बात विवाहितों के लिये ही है। देवृकामा और देवकामा दोनों ही पाठों की उपयोगिता है इस में हेय और उपादेय की बात नहीं। हम किसी अन्य व्याख्याता के प्रति उत्तर दायी नहीं। हमें श्री स्वामी जी का पक्ष सर्वथा ग्रहणीय है और वही युक्ति सङ्गत भी है।

४४ पृष्ठ ७४ ऋ १०-८५-४० की व्याख्या में पहिले पति को सोम, दूसरे को गन्धर्व तीसरे को अग्नि तत्पश्चात् मनुष्य संज्ञा लिखी। इस भेद के अर्थ युक्ति युक्त प्रतीत नहीं होते। मुझे इस का तात्पर्य यह सूझता है कि पति का अर्थ रक्षा करने वाला मान कर सौम्य स्वभाव १३-१४ वर्ष की आयु तक कन्या की रक्षा करता है फिर चंचल स्वभाव गन्धर्व अवस्था का आरम्भ, फिर विवाह तक (ब्रह्मचर्य तेज) अग्नि रक्षा करता है। सन्तान होने पर उस के पति की संज्ञा प्रजापति हो ही जायेगी। गृहस्थाश्रम के पश्चात् पति या उसके मरने पर पुत्र साधारण मनुष्य अवस्था रूप में रक्षा करेंगे। फिर वेद मंत्र में तो नियोग का कोई शब्द ही नहीं। स्वामी जी अपनी ओर से लिखे जा रहे हैं।

निरुक्त — देवरः कस्मात् द्वितीयो वरः उच्यते' का आधार पक्ष नहीं। यदि यहां 'बहुना' होता तब तो कुछ बात भी होता।

उत्तर— मंत्र में प्रथम पति को सोम और दूसरे को गन्धर्वादि ठीक ही कहा गया है। प्रथम पति कुमार होने के कारण सौम्य स्वभाव से युक्त होगा। दूसरा नियुक्त पति होने से गन्धर्व ठीक ही है। तीसरा वर भी जो नियोग से सन्तान उत्पन्न करने को उद्यत है स्पष्ट ही उस में कामाग्नि की प्रधानता है।

४४ प्रतिशंका- इससे पूर्व विवाह के लक्षणों में 'गान्धर्व' के बारे में लिखा है 'अनियम असमय' किसी कारण से दोनों की इच्छा पूर्वक संयोग होना गन्धर्व संज्ञा की पुष्टि करने में क्या यह लक्षण हेतु है? दूसरा पति नियुक्त होने के कारण गन्धर्व कहलाता है। तो आगे के भी नौ पति नियुक्त होने के कारण गन्धर्व ही कहलाये जाने चाहिये। तीसरे को आप अधिक कामाग्नि वाला बतलाते हैं तो शेष आठ जो नियोग के लिये उद्यत होंगे तो आप की दलील से वह उत्तरोत्तर कामाग्नि युक्त होंगे तो उन को मनुष्य क्यों कहा जावे? मन्त्र में शब्द मनुष्यजा है जिस के अर्थ मनुष्य से पैदा हुये बनते हैं।

इससे शक पड़ता है कि सोम, गन्धर्व अग्नि मनुष्य पैदायश से अलग श्रेणियां हैं अभीयह शंका समाधान स्पष्ट नहीं। मैं ने अथर्व १८-३-२ का उल्लेख कर पुनर्विवाह की बात लिखी और जैसे पहिले कन्या का सौम्य स्वभाव फिर कुछ कही चंचलता होने के कारण गन्धर्वपन। पति का अर्थ रक्षा करने वाले का सुझाव दिया फिर सम्भल कर ब्रह्मचर्य तेज (अग्नि) कि वह होगे बति पर बुढ़ापे में पति या पुत्र साधारण मनुष्य अवस्था। उन का खण्डन मण्डन आपने कुछ नहीं किया।

समाधान-गान्धर्व विवाह के साथ इस गन्धर्व का कोई सम्बन्ध नहीं। वह विवाह की आज कल की भाषा में Love marri a ge है। मनुष्य तो सोम, गन्धर्व आदि सभी हैं। मेरी सम्मति में गुणों के कारण जैसे कामशास्त्र में वृष अश्व, शशक, आदि नाम पुरुषों के गुणों के कारण रखे हैं यह भी उसी प्रकार के नाम हैं। मैं आपकी पुनर्विवाह वाली बात से सहमत नहीं।

४५ (क) पृष्ठ७५ ऋ मंडल १० सूक्त १० 'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्' इसमें भी दूसरे पति का जिकर है नियोग का नहीं।

(ख) पृष्ठ ७५ मनु ९/७६ तथा ८१ इन दो श्लोकों में कोई शब्द नियोग का नहीं इतनी बाट देख कर, क्या करना, इस पर मनु चुप है। नियोग की बात स्वामी जी ने अपनी ओर से लगा दी है।

उत्तर (क) जब एक बार यह निर्णीत हो गया कि द्विजों में नियोग होना चाहिये तो जहाँ भी पति शब्द होगा उस का स्वभावता ही अर्थ नियुक्त पति ही होगा।

(ख) मनु के ५८ वें श्लोक में 'नियुक्तो' शब्द स्पष्ट नियोगार्थ नियुक्त पतियों के लिये ही है।

निष्कर्ष

जो वेद मंत्र नियोग की पुष्टि में दिये हैं किसी में भी कोई शब्द ऐसा नहीं जिस से नियोग की सिद्धि हो सके हां पृष्ठ ७४ पर मनु के श्लोक ५९, ५८, १५९ में 'नियुक्तियां है। वेद में (विधवा) का पुनर्विवाह है इससे जाहिर है कि यह मृत की बाके

पुरुष के साथ ही आयु तथा गुण कर्म स्वभाव को देख कर ही होगा ।

(२) वर्ण एक आन्तरिक वृत्ति है । जीविका के लिये काम कुछ ही करे ।

(३) विवाह की सप्तपदि में सखा मानते हुवे भी स्त्री का दरजा पुरुष के बराबर नहीं रखा (राजा वजीर की भी बात है) स्त्री को पति के पांऊ छूना और प्रक्षालन लिखा । पति की आज्ञानुसार गृह कार्य करना सन्यास का अधिकार नहीं दिया ।

मेहर सिंह १६-१२-६१

पञ्चम समुल्लास

४६ पृ० ७६ सब ग्राम के आहार और वस्त्रादि छोड़ देवें । कन्दमूल आदि से हवन करना पंच महायज्ञ तथा अपना निर्वाह करना ।

शंका—वन में जाने से उसका पुत्र दैनिक पितृ यज्ञ कैसे करेगा । ग्राम अहार छोडने से पुत्र आदि कभी वन में आ भी जावें तो, पिता का क्या सत्कार करेंगे । कहीं भी दूध के प्रयोग का भी तो वहां जिकर नहीं । ग्राम वस्त्र छोड़ने से मच्छर वर्षा गर्मी सर्दी से कैसे बचेगा ? मूल-कन्द के हवन से तो दुर्गन्ध पैदा होगी ।

समाधान—४६ (क) पितर नाम केवल अपने पिता का ही नहीं है अपितु उस कोटि के समस्त जन पितर शब्द में गृहीत होंगे और प्रत्येक को ऐसे महापुरुषों की सेवा का अवसर मिल ही सकता है ।

(ख) पुत्र पिता के व्रत के अनुकूल वन्य फलादि प्रस्तुत करके भी पिता का सम्मान कर सकता है।

(ग) शरीर रक्षा के लिये अनिवार्य वस्त्रादि के परित्याग की बात नहीं है अपितु गृहस्थ में अनेक प्रकार के वस्त्र जो शरीर सज्जा के लिये पहिने जाते थे उनका परित्याग कर देना चाहिये।

(घ) धूप, ताप, सर्दी गर्मी का अभ्यास तो शनैः शनैः होना ही चाहिये।

(ङ) यज्ञ अग्नि में किस प्रकार की वस्तुयें डालना चाहिये यह पूर्व ही बताया जा चुका है अतः वे ही जड़ी बूटी और पुष्प फलादि डालने चाहियें जो पुष्टि कारक और गुण वाले हों।

४६ (क) प्रतिशंका—पञ्चमहायज्ञविधि में पितृयज्ञ के प्रकरण में यजु २/३४ लिखा। इस में शब्द 'मे पितृन' है आप की बात में यह न्यूनता रहती है। फिर २६ से ५० तक के गृहस्थी अपनी अपना आयु से बड़ों को पितर मानेंगे क्या ? बड़े भाई मानना तो युक्त युक्त हो सकता है पिता नहीं। फिर जो पचासवें वर्ष में हैं उनके लिये तो कोई गृहस्थी पितर नहीं होंगे।

उत्तर—'पितर' एक परिभाषिक शब्द है। ५० वर्ष की आयु से अधिक वाले के लिये ही वह सामान्यता प्रयुक्त होगा। पितर वह है जो 'स्वधा' का (आज कल की भाषा में कहें तो 'पैन्शन' का) अधिकारी हैं और पैन्शन कार्य निवृत्त व्यक्ति को प्राप्त होती है।

४७ पृष्ठ- ८० भूमि में सोवे वृक्ष के मूल में बसे।

शंका—भूमि पर सोने से बिच्छू सर्पादि से क्या बचाव ?

वृक्ष के मूल में रहने से रात्रि को कार्बानिक गैस से क्या रोगी न होगा ?

उत्तर— इसका आशय केवल इतना है कि अपना घर बना कर न रहे।

प्रतिशंका। 'घर न बनावे' इस उत्तर से मेरे प्रश्न का हल नहीं होता। आखर वस्त्र भी पहिनने, रखने, खाद्य पेय पदार्थ याज्ञिक सामग्री बिना घर या कुटिया के कैसे सुरक्षित रहें।

प्रत्युत्तर—कुटिया बनाने का कहां निषेध है आशय तो यह है कि निर्वाह का ध्यान तो कर ले। किन्तु उस में सुख सुविधा की खोज न करे

४८ पृष्ठ ८० मुण्डक उपनिषद् का हवाला देकर भिक्षाचरण लिखा परन्तु इस से पूर्व पृष्ट ७६ पर किसी से कुछ न लेवे ऐसा लिखा। इस परस्पर विरोध को मिटाने की आवश्यकता है।

उत्तर—संग्रह की दृष्टि से किसी से कुछ न ले यह अभिप्राय है। बुभुक्षा निवृत्ति के लिये यदि किसी से कुछ ग्रहण करे तो उस में कोई हानी नहीं।

४६ पृष्ट ८२ यजु २०/२४ का हवाला देकर लिखा वानप्रस्थी को उचित है कि—

शंका— वेद मन्त्र में कोई शब्द वानप्रस्थ का बोधक नहीं।

उत्तर— यह मंत्र वानप्रस्थ प्रकरण में है। अतः यही अर्थ उचित है। घर छोड़े बिना वानप्रस्थ आश्रम का लक्ष्य ही पूरा न हो सकेगा।

प्रतिशंका—जिस वेद मंत्र में वन जाने का आदेश नहीं उस को वानप्रस्थ की पुष्टि में देना मूलतः अनुचित है। मैं ने स्वामी जी का भाष्य तथा भावार्थ पढ़लिये हैं वहां वान प्रस्थ की गन्ध भी नहीं।

नोटः— इस प्रतिशंका का कोई उत्तर नहीं आया।

५० पृष्ठ ८० वानप्रस्थ की समाप्ति पर सन्यास की इच्छा पर स्त्री को घर भेज देना लिखा। गोया स्त्री को सन्यास का अधिकार नहीं।

उत्तर—सन्यास मार्ग पर चलना स्त्रि के लिये अत्यन्त कठिन है इस लिये सामान्यतया यह बात कही है। यदि स्त्री में भी उस साधन की क्षमता हो तो वह भी सन्यास ले सकती है।

५१ पृष्ठ ८१ मुण्डक ३ खं २ मं ६ का हवाला देकर लिखा है 'पश्चात जब मुक्ति की अवधि पूरी हो जाती है तब वहां से छूट कर संसार में आते हैं। शंका इन अर्थों का द्योतक मंत्र में कोई शब्द नहीं।

उत्तर—मंत्र में 'परान्तकाले' शब्द विद्यमान है।

प्रतिशंका-'परान्तकाले' के सम्बन्ध में मुक्ति काल की अवधि इसी उपनिषद् वाक्य के आधार पर नवम समुल्लास में लिखी है। वहां विस्तृत उत्तर शंका ७६ पर लिखना। मैं ने श्री नारायण स्वामी जी की मुण्डकोपनिषद ३-२-६ का भाष्य पढ़ा जो इस प्रकार है 'वेदान्त—वेद की अन्तिम शिक्षा और विज्ञान से (सुनिश्चितार्थाः) निश्चयात्मक ज्ञान रखने वाले (संन्यास योग स्) वैराग के योग से (यतयः) यत्नशील (शुद्ध सत्वाः) निर्मल अन्तः-

करण वाले (ते सर्वे) वे सब (परान्त, काले) शरीरान्त समय में (ब्रह्म लोकेषु) ब्रह्म लोक में (परामृता:) जाते हैं इस में मुक्ति पाने की बात है वापसी की नहीं। और परान्तकाले का अर्थ भी शरीरान्त समय में किया है। ❀

५२ पृष्ट ८० पर 'यतय:..........लिख कर सन्यास के लिये वेद का प्रमाण माना है। कोई वेद मंत्र नहीं दिया यदि यह वेद का मंत्र है तो हवाला देकर पूरा लिखा जावे।

उत्तर सन्यास के लिये वेद का प्रमाण (अभी नहीं मिला) मेरा नोट इसी प्रकार वानप्रस्थ के लिये भी स्पष्ट वेद प्रमाण चाहिये !

५२ सन्यास की सम्पुष्टि में कोई वेद मन्त्र आपने ढूंडना लिखा था। अभी तक कुछ हाथ नहीं आया मैंसि २१-७-६४

अत्यावश्यक नोट—'वर्णाश्रम धर्म पर कुछ विचार' इस शीर्षक से मेरा लेख आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सप्ताहिक पत्र आर्य्य 'दिनांक २२-२-५६ में छप चुका है 'किसी भी आर्य पुरुष या सभा ने इस का उत्तर छपवाने की कृपा नहीं की सार्वदेशिक सभा पर मुझे विशेष गिला है।

नोट दूसरा- ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उपासना विषय में उपनिषदों के हवालों में मुण्डक १, खंर २ म ११ तप: श्रद्धे ये ह्युप वसन्ति, अरण्य.......... का अर्थ करते हुवे 'अरण्ये' शब्द का सीधा वानप्रस्थ वाला वन न लिख कर यूं लिखा है जो, मनुष्य धर्माचरण से परमेश्वर और उसकी आज्ञा में अत्यन्त प्रेम

❀ इस प्रतिशंका कोई उत्तर नहीं।

करके अरण्य अर्थात् शुद्ध हृदय रुपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते है वे परमेश्वर के समीप निवास करते हैं।

इस लेख से यह सिद्ध हुवा कि वन में जा कर रहना आवश्यक नहीं है। जैसा कि निचले श्लोक में भी कहा गया है।

> अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते।
> निवृत्त रागस्य गृहं तपो वनम्॥
> वनेषु दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्।
> गृहेषु पंचन्द्रिय निग्रहस्तपः॥

मेहरसिंह २७-७-६४

षष्ठ समुल्लास

५३ पृष्ठ ८८ ऋ मं ३ सू ३८ मंत्र ६ में लिखे त्रिणी सदांसि का अर्थ स्वामी जी ने विद्या, धर्म, और राज्य आर्य्य सभा किया।

शंका—इस का आधार क्या है? क्यों कि कोई भी कह सकता है उसका कि अभिप्राय आज कल जैसी लोक सभा, राज्य सभा Cabinet कार्य्यकारणी सभा है।

उत्तर—कार्य निर्वाह की दृष्टि से तीन प्रकार की सभायें आवश्यक हैं। उनके नाम आप कोई भी रख लीजिये।

५४ पृष्ठ ८६ यजु ६/४० में किस शब्द के अर्थ सभापति बनते है।

उत्तर—मन्त्र में प्रजा को किस प्रकार के राजा को चुनना चाहिये इस योग्यता का वर्णन है उसके लिये इमम् 'असपत्नम् सुवध्वम्' शब्द मन्त्र में विद्यमान हैं।

प्रतिशंका—मेरी शंका तो सभापति के शब्द पर है। स्वामी जी ने यजु ९/४०का आधा भाग दिया है दूसरा भाग इस प्रकार है-

"इममभुष्य पुत्र मुमुष्यै पुत्र मसौविविषऽएष वो ऽमी राजा- सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा" यहां भी शब्द राजा है सभापति नहीं। मेरा भाव यह है कि स्वामी जी ने आज कल की प्रचलित डैमाक्रेसी [Democracy] को देख कर सभापति को शब्द जोड़ दिया है कृपया [Democracy] की संपुष्टि में कोई वेद मंत्र ढूंडे तो शंका समाप्त हो जायगी।

उत्तर—राजा शब्द जिस धातु से बनता है उसका अर्थ है प्रकाशित होना अतः सभा पति का भाव इसमें स्वतः निहित है। वह गुणों के कारण प्रकाशित हुवा है, चुना गया है। केवल जन्म के कारण नहीं।

४५ पृष्ठ ८१ में मनु १२।१११, ११३ के 'त्रयश्चा श्रमिणः' और द्विजोत्तमः के अर्थ क्रमशः [१] ब्रह्मचारी गृहस्थ और वान प्रस्थ और [२] सन्यासी किये हैं।

शंका मेरे विचार में यहां किसी की भूल जरूर है त्रियश्चा- श्रमिणः में गृहस्थी वानप्रस्थी और सन्यासी और द्विजोत्तमः में ब्राह्मण का बोध लेना चाहिये क्योंकि ब्रह्मचारी पढ़ रहा प्रबन्ध से अलग रहना चाहिये और सन्यासी आश्रम का द्योतक है वर्ण का नहीं द्विजोत्तम ब्राह्मण ही हो सकता है। सन्यासी नहीं।

उत्तर प्रतिशंका ५५—विद्याध्ययन समाप्त करने पर भी जो गृहस्थ में नहीं जाते इस प्रकार के व्रतियों का राजकाज में सहयोग देने में क्या हानि है ? द्विजोत्तम का जितना उपयुक्त अर्थ सन्यासी हो सकता है उतना ब्राह्मण नहीं। क्योंकि द्विज शब्द सुसंस्कृत और सुविज्ञ अर्थ का बोधक है।

५६ पृ० ६३ मनु ७/५७ के अर्थ में 'बहुपदानुसार' अपनी ओर से जोड़ दिया है।

उत्तर—जब शासन का ढांचा प्रजातान्त्रिक ढंग का हो तो बहुपक्षानुसार बात तो अपने आप आ जाती है। इसके अतिरिक्त निर्णय का प्रकार क्या हो सकता है।

प्रतिशंका—आपका उत्तर मेरी इस शंका को कि (Democracy) वेद और मनु के समय में न थी और पुष्ट करता है। स्वामी जी ने आज कल की हवा देख कर (Democracy) का रंग अपनी तर्फ से चढ़ा दिया है ताकि वेदादि शास्त्रों का महत्व आज कल के पढ़े लिखे लोगों में बढ़े घटे नहीं।

उत्तर—मुझे अपना वही उत्तर युक्त प्रतीत होता है कि प्रजा तान्त्रिक ढांचे में कोई निर्णय सर्व सम्मति से न हो सके तो फिर बहुमत से ही करना होगा। वेद में किसी स्थल पर भी यह नहीं मिलता कि राज्य का अधिकार परम्परा से होता है। जहां भी वर्णन है वहां गुणों के आधार पर वरण करने का है। अतः वेद में मूलतः है ही प्रजातान्त्रिक ढांचा।

५७ पृष्ठ ६४ मनु ७.६३ में दूत शब्द के अर्थ को सन्धि-भेद कराने वाला माना है। मेरे विचार में दूत का कर्तव्य अपने

राज्य के सम्बन्ध में भली बुरी खबरें पहुँचाना है उस पर कार्यवाही करना राज्य का काम है दूत का नहीं।

उत्तर—इस समय भी दूत केवल संदेश वाहक का काम नहीं करते अपितु अपने राष्ट्र की नीति और निर्णय के अनुसार सन्धि आदि के काम में भी सहयोग देते हैं जैसे भारत के अमेरिकन दूत का अमेरिका के साथ भारत के सम्बन्ध किस प्रकार के हों इस विषय में कितना विशेष भाग होता है :

५८ पृष्ठ ६५ मनु ७।७८ की व्याख्या में लिखा कि पुरोहित और ऋत्विज का स्वीकार इस लिये करे कि वे अग्निहोत्र पक्षेष्टि यज्ञ राज घर के कर्म किया करें और आप सर्वदा राज कार्य में तत्पर रहे अर्थात् यही राजा की संध्योपासना आदि कर्म हैं।

शंका—इसी की देखा देखी अन्य धनी मानी सेठों ने पैसे देकर अपने लिये गायत्रि जाप कराने शुरु कर दिये ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी जी ने भी इसे पीछे महसूस किया क्यों कि पृष्ठ ६६ मनु ७.१४५ में प्रातः उठकर अग्निहोत्र करना लिखा है।

उत्तर ५८ उत्सर्ग तो यही है कि राजा भी नैतिक धार्मिक कृत्य सामान्य जनों के समान ही करे। किन्तु विशेष स्थिति होने पर संध्या की अपेक्षा राज्य व्यवस्था को राजा को प्राधानिकता देने की बात कही है यदि राजा इन कार्यों से सर्वथा मुक्त होता है। दूसरे श्लोक में इसका विधान ही क्यों होता।

५९ पृष्ठ ६५ मनु ७/८९ की व्याख्या में 'किन्तु कभी कभी शत्रु को जीतने के लीये ...... आखीर तक के शब्द स्वामी जी अपनी ओर से लिख रहे हैं। इसी प्रकार पृष्ठ ६६ पर ९३ वें

श्लोक अर्थ में भी यही शैली अपनाई है। पृष्ट ६६ पर अपने मन से एक काम भी न करे जब तक सभासदों की अनुमति न हो यह शब्द भी स्वीमी जी के अपने हैं, अर्थ की यह शैली मुझे ठीक नहीं लगी।

उत्तर- ऋषि कोई मनुस्मृति का अनुवाद करने के लिये थोड़े ही बैठे थे। वे तो एक बात की पुष्टि में जो सहायक मन्त्र श्लोक आदि उपलब्ध थे उनका उल्लेख करते जाते थे "कभी कभी पीछे हटने वाली बात ऋषि ने स्वतन्त्र अपनी ओर से लिखी है। शंका इसके औचित्य पर तो हो सकती है किन्तु इस रूप में नहीं कि यह उसका अनुवाद है।

प्रतिशंका— जैसे आज कल के लेखक किसी अन्य का हवाला देते हैं तो उसका अनुवाद करके अपनी ओर से न्यून-अधिक लिखते हैं तो वह ऐसा लिख देते हैं कि "हमारी सम्मति में .... ऐसा स्वामी जी ने नहीं किया इसका मुझे बड़ा खेद है क्यों कि संस्कृत से अनभिज्ञ पढ़ने वाले तो हवाले का अनुवाद ही समझते हैं। यह शैली बड़ी भ्रम मूलक साबित हुयी है क्योंकि समाज के मंच से कहा जाता है और स्वामी जी ने भी स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखा है कि ब्रह्मा से ले कर जैमिनी मुनी पर्यन्त मानते थे वही मानता हूँ मेरा कोई नवीन कल्पना का अभिप्राय नहीं है। ऐसी धारणा करके लाहौर में हमारी कुमार सभा के सदस्य को एक सनातनी भाई से मुहँ की खानी पड़ी। बात नियोग पर थी देखें शंका ४५ मनु ६/७६, ८१/ मनु ने यहां पर इतनी वाट देखने का ही उल्लेख किया है आगे चुप है। स्वामी जी ने नियोग करना लिख दिया।

उत्तर— जो बात आप कहते हैं वह अनुवाद पर तो घटती है, स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखने पर नहीं। यहां तो लेखक स्वतन्त्रता से एक विषय का प्रतिपादन करता है और उसकी पुष्टि में प्रमाण उपस्थित करता है।

नोट- मेरा रोना तो यही है कि प्रमाण में नियोग की बात है ही नहीं। (मेहरसिंह)

६० मनु के ६६ वें श्लोक में जो माल पशु स्त्रियें जिस ने जीती हों उसी को देवे।

शंका—स्त्रियों को सन्मान से वापिस करना ठीक समझा जाना चाहिये था। क्यों न इस श्लोक को प्रक्षिप्त समझा जावे।

उत्तर— इस श्लोक से पूर्व ही यह लिखा जा चुका है "कि स्त्रियों को अपनी बहिन और माता के समान समझे। कभी विषया सक्ति की दृष्टि से न देखें। तो यहां भी यही संगत प्रतीत होता है।

प्रतिशंका— इस से पहिले के श्लोक मेरे पढ़े हुवे हैं। यह राज स्थापन से पहिले की बात है। राज स्थापन होने के पश्चात् लूट की बाट की बारी आई तो ऐसा लिख दिया! आप खुले शब्दों में मनु की इस बात की निन्दा करें!

प्रत्युत्तर— मनु का मन्तव्य भी विशुद्ध रूप में हमें कहां प्राप्त है। जो मनु देवियों का इतना आदर करता है वह कैसे इसका प्रतिपादन करेगा। मेरी सम्मति में यह बहुत की ही गड़ बड़ है।

६१ पृष्ठ १०६ मनु ८/७५ पृष्ठ १०८. १०९ पर लिखे दण्ड बहुत सख्त है। पृष्ठ १०७ पर तो जुरमाने की सजायें लिखी पृष्ठ ११४ पर दण्ड का प्रयोजन उस का सुधार लिखा है प्रभु भी दूसरे जन्म मे अङ्ग छीनने की सजा देता है तत्काल ही नहीं आजकल तो जेलों में Reformatory System चल रहा है। मनु की ऐसी बातें आजकल माननीय नहीं हो सकी अतः सत्यार्थ प्रकाश द्वारा उनकी Publication हानि पहुँचायेगी।

उत्तर—६१ दण्ड की कठोरता का एक स्थल पर ऋषि स्वयं समाधान कर चुके है। थोड़ा थोड़ा दण्ड अन्त में कितने गुणा अधिक हो जाता है। अपराधों की थाम के लिये कठोर दण्ड आवश्यक है। यह अनुभव सिद्ध है आज कल की नरमी का प्रभाव अनुकूल होता तो अपराधों में न्यूनता होनी चाहिये थी किन्तु है नहीं ऐसा।

६२ आततताई को मार कर पीछे विचारे।

शंका—पीछे विचारने का लाभ ? यह उलटी शिक्षा क्यों ?

उत्तर—यह भाव प्रकाशन की एक शैली है जिसका सार यह है कि अततताई को अवश्य मारना चाहिये।

सप्तम समुल्लास

६३ पृष्ठ ११३ गुण का ज्ञान होता है गुणी का नहीं।

शंका— यह बात समझ में नहीं आई। खांड खाई, मीठी

लगी, रुप में सफेद देखी। यही तो खांड का ज्ञान है। गुण गुणी का बोधक है।

उत्तर--गुण से गुणी का ज्ञान होता है यह बताया गया है। प्रत्यक्ष गुण का होता है और गुणी का प्रत्यक्ष पूर्वक ज्ञान।

मेरा नोट- ऐसी अवस्था में 'गुणी का नहीं' यह शब्द भ्रम मूलक ठहरते हैं सत्यार्थ प्रकाश से निकालने योग्य हैं। सार्व देशिक सभा ध्यान दे!

६४ पृष्ट ११४ परमेश्वर के सबूत में अन्दर से पाप के विरुद्ध आवाज उसी की तर्फ से लिखी है।

शंका— पृष्ट १२२ पर शब्द हैं "वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और पराधीनता से काम सिद्ध हो तो पाप-पुण्य जीव को न लगे "दोनों लेखों को इकट्ठा पढ़ अधिक स्पष्टी करण की आवश्यक्ता है। मूर्ति पूजक पशु बली देने वालों को भी अन्दर से उत्साह ही मिलता है।

उत्तर— सामान्य स्थिति यही है कि हिंसा से मन दुःखी होता है। पशु-बली की ओर उत्साह का कारण वे विचार हैं जो धर्म पुरुषों ने अनेक प्रकार से बुद्धि में बिठा दिये कि यह पशु स्वर्ग में जाता है। इस में उसका अनिष्ट नहीं आदि।

प्रतिशंका ६४ पृष्ट १२२ को साथ मिला कर-------, स्पष्टी करण की जो याचना की थी वह पूर्ण नहीं हुवी।

उत्तर—भाव यह है कि प्रभु कर्ता की स्वतन्त्र इच्छा को रोक करके किसी काम को नहीं कराता। यदि ऐसा होताहुवा

उस का फल भी वही भोगता। अत: यह काम करो यह वह आदेश नहीं जो स्वामी अपने सेवक को देता है। अपितु मित्र परामर्श के समान है जिसमें कर्ता की इच्छा का विघात नहीं है।

६५ पृष्ठ ११६ 'दूरङ्गमम्' मन को दूर जाने वाला कहा।

शंका—मन कहीं नहीं जाता। चित्त पट पर पड़े पूर्व संस्कार स्मृति में आ जाते हैं। इस बात को जितलाने के लिये हमारे यहां 'चित्र गुप्त' का शब्द प्रसिद्ध ही है।

उत्तर—यह भी भाषा की एक शैली मात्र है। दूर दूर तक की वस्तुएं एक साथ मानस पटल पर चित्रित हो जाती हैं।

६६ पृष्ठ ११६ जिस से सब योगी लोग भूत, भविष्य वर्तमान व्यवहारों को जानते हैं।

शंका—सत्यार्थ प्रकाश में अन्य स्थान पर भविष्य का ज्ञान परमेश्वर में भी नहीं माना। ऐसे लेख से ज्योतिषियों की चढ़ बनेगी और आर्य लोग भी उनके हाथों खेलेंगे।

उत्तर—भविष्यत् के ऐसे ज्ञान का निषेध है जिसका का अभी कारण भी नहीं है। किन्तु जो कर्म का फल भविष्य में मिलने वाला है उसका बीज तो है उसका विस्तार ही भविष्य है। इस प्रकार के भविष्य की बात तो साधारण लोग भी जानते हैं। योगी लोग ज्ञान की सूक्ष्मता से उसको ठीक ठीक जान सकते हैं। अत: इस प्रकार का भविष्य ज्ञान कोई आपत्ति जनक नहीं।

६७ पृष्ठ ११२ पर ऋ १०-४८-१ की व्याख्या में लिखा है कि ईश्वर धनों का विजेता है।

शंका—ईश्वर किस से लड़ाई कर धनों को जीतता है।

उत्तर—पुरुषार्थ पूर्वक वस्तु पर आधिपत्य ही विजय है। इसी कारण प्रभु को विजेता कहा गया है।

प्रतिशंका—पुरुषार्थ तो अप्राप्त के लिये करना पड़ता है। परमेश्वर को तो सब वस्तु स्वतः सिद्ध प्राप्त है जैसा कि इसी वेद मन्त्र में 'अहम्भुव वसुनः पूर्व्यस्पतिरहम्' के 'पति' शब्द से सिद्ध होता है।

उत्तर—प्रभु में ज्ञान, बल और क्रिया स्वभाविक है। उसके आधार पर ही यह जड़ जगत गति कर रहा है। निःसंदेह प्रभु को सब कुछ प्राप्त है पर वह प्राप्ति भी तो उसकी इस योग्यता के कारण है। यहां 'जय' शब्द लौकिक जय पराजय के भाव का द्योतक नहीं अपितु एक काव्यमय सुन्दर शैली से अधिष्ठाता और स्वामी है, वह बताया गया है।

६८ पृष्ठ ११६ श्वेताश्वेतर उपनिषद् अ० ६ मं ८ चेतन होने से उसमें क्रिया भी, है।

शंका क्रिया करने के लिये खाली स्थान चाहिये। परमात्मा सर्वव्यापक है अतः कोई स्थान खाली नहीं रहता।

उत्तर यह कोई नियम नहीं कि क्रिया के लिये स्थान खाली हो। (अपने से बाहर कार्य करना हो तो खाली स्थान की आवश्यकता होती है। अन्दर ही कार्य के लिये नहीं। परमात्मा के सब काम अन्दर ही होते हैं)।

६६ पृष्ठ १२१ परमेश्वर का सर्व व्यापक होने से आना जाना नहीं हो सकता।

शंका—ठीक कहा। परन्तु वेद मंत्र 'अग्न आया हि' का भी तो ध्यान करलें।

उत्तर—यह विचार प्रकाशन की एक शैली मात्र है। ज्ञान की अनुभूति का साक्षात्कार ही आना है।

७० पृष्ट १२२ स्वभाव दोनों का पवित्र धार्मिकता आदि हैं।

शंका—स्वभाव तो बदलता नहीं जैसे अग्नि जलाती है। यदि जीव स्वभाव से पवित्र धार्मिक और अनादि भी है तो जैसे हम वेदान्तियों को कहते हैं कि ब्रह्म को माया कब से और क्यों लगी वही प्रश्न हम पर आयेगा अतः जीव का लक्षण इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःखादि जो न्याय और वैशेषिक के आधार पर दिये ठीक नहीं हैं।
इस का उत्तर परिशिष्ट ६ में देखें

इस पर मेरी नोट:-जब सब जीव स्वभाव से पवित्र और धर्मात्मा हैं तो किसी को भी किसी से द्वेष आदि दुर्विचार उत्पन्न होने की कोई संभावना नहीं जीव अल्पज्ञ होते हुये भी मुक्ति अवस्था में कोई दुर्भावना नहीं रखता। स्वभाव से पवित्र और धर्मात्मा मानने से सब जीवों की ऐसी अवस्था माननी पड़ेगी। उनका जन्म-मरण में आने के लिये कौन निमित बनेगा। ईश्वर उनसे कोई अनुचित भाव या कार्य करायेगा नहीं। प्रकृति जड़ है जब तक जीव शरीर धारण न करलें इस का उन पर कोई प्रभाव नहीं। उन जीवों में स्त्री-पुरुष का भी कोई लक्षण नहीं जिससे यह अनुमान लगायें कि वह किसी प्रकार के पाश में फसेंगे। अतः न्याय और वैशेषिक की धारणा जो स्वामी जी ने भी मानी है मानने से ही जीवों में पतन की सम्भावना होने से प्रवाह से अनादि सृष्टि चक्र चलता है स्वभाव से पवित्र धार्मिक मानने से नहीं।

७१ पृष्ठ १२३ जीव शरीर में विभू है या परिच्छिन्न ? यह प्रश्न करके स्वामी जी का उत्तर है 'परिच्छिन्न'।

शंका—यह उत्तर ठीक समझ में नहीं आया, यदि इस शरीर में एक स्थानीय है तो किस अङ्ग में ? फिर बाकी अङ्गों की खबर कैसे रखता है ?

उत्तर- 'हृदय जीव का स्थान है। वहीं से नस नाड़ियों के द्वारा समस्त शरीर का बोध होता है।

७२ पृ० १२३ (क) ईश्वर और जीव का स्वामी-भृत्य सम्बन्ध समझ मे नहीं आया क्योंकि न ईश्वर को सेवा की आवश्यकता और न जीव में इतनी सामर्थ्य।

७२ पृ० १२५ (ख) परमात्मा को जीव में अनुप्रविष्ट लिखा। अनु कहते हैं पीछे को-तो क्या जीव की हस्ति ईश्वर से पहिले की है ?

उत्तर (क) अभिप्राय भावना से है।

जो भावना भृत्य की स्वामी के प्रति होती है वही भक्त की प्रभु के प्रति होनी चाहिये। (निष्कर्ष लोक सेवा में जुट जाय,। मे० सि०।

उत्तर—(ख) भाव केवल इतना है कि प्रभु जीव कहीं से सूक्ष्म है और वह उसमें भी व्याप्त है।

प्रतिशंका-आपका उत्तर सिद्धान्त की दृष्टि से तो ठीक है परन्तु सत्यार्थ प्रकाश का लेख 'अनु' का अर्थ 'पीछे' करता है इसका क्या किया जाय ?

उत्तर—यहां अनु का अर्थ पीछे नहीं अपितु उसकी अपेक्षा अधिक सूक्ष्म है, इस भावना का द्योतक है।

७३ पृ० १२८ यजु ४०।८ वेद द्वारा सब विद्याओं का प्रकाश करता है।

शंका—इस अर्थ का द्योतक वेद मन्त्र में कोई शब्द नहीं।

उत्तर—'याथातथ्यातोर्थान्' स्पष्टीकरण है यही सिद्ध किया जा चुका है कि वेद के बिना मनुष्य को हेय और उपादेय का ज्ञान नहीं हो सकता।

७४ पृ० १२६ शतपथ ११-४-२-३ तथा मनु १।२३ में अथर्व का कोई शब्द नहीं परन्तु स्वामी जी लिखे जा रहे हैं।

उत्तर—'वेदत्रयी' से सर्वत्र चार वेद गृहीत होते हैं। क्योंकि चारों वेदों में मन्त्रों के प्रकार तीन हैं। अतः जहां भी संख्या की चर्चा का प्रसङ्ग हो वहां चार ही गिनने चाहियें।

७५ पृ० १३० 'ऋषियों (मन्त्र द्रष्टृभ्यः)'' मन्त्रान्सम्प्रादुः। निरुक्त १-२०'।

इस सम्बन्ध में स्वामी जी ने जो कुछ लिखा है उससे यह परिणाम निकलता है कि 'इन सब से पूर्व मन्त्रद्रष्टा ऋषियों से पहिले के लोग मन्त्रार्थ से अनभिज्ञ रहे यह स्थिति सन्तोष जनक नहीं? मानना पड़ेगा कि अग्नि,वायु, आदित्य अङ्गिरस को अर्थ सहित वेद ज्ञान हुवा और अर्थ सहित ही उन्होंने दूसरों को सिखलाया। वेद मन्त्रों पर लिखे ऋषि नाम उन मन्त्रों के विशेष मनन करने वाले तथा आचरण में लाने वालों के हैं।

उत्तर—इसमें कोई संदेह नहीं कि अग्नि आदि ऋषियों को वेदार्थ का पूर्ण ज्ञान था आगे के समय में भी कोई व्यक्ति

मनन पूर्वक मंत्र के अर्थ का यथावत दर्शन करेगा तो वह भी ऋषि कहलायेगा। जैसे इस समय में वेदों का ठीक ठीक अर्थ बतला कर उसका उद्धार करने के कारण श्री स्वामी दयानन्द जी को ऋषि कहा जाता है।

प्रतिशंका—भगवन्। सत्यार्थ प्रकाश के इन शब्दों का मूल्य लगाईये "जिस जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस जिस ऋषि को हुवा और प्रथम ही, जिसके पहिले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था और दूसरों को भी पढ़ाया जैसा मैं, आप और समाज मानता है तदनुसार इस का कोई मूल्य नहीं रहता। स्वामी जी के इस लेख का कोई स्पष्टीकरण ढूंढना होगा या। इस लेख को अमान्य ठहराना होगा।

उत्तर प्रतिशंका ७५ अभिप्राय यह है कि वर्तमान में जिस जिस मन्त्र का आशय अज्ञात है। पहले किसी ने जाना होगा उसका इस समय किसी को कुछ पता नहीं। ऐसे मन्त्र को यथार्थ रूप से जान कर पढ़ाने वाला ऋषि होता है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि उसका अर्थ अग्नि, वायु आदि और ब्रह्म को भी अज्ञात था।

नोट:—मैंने कईयों को यह प्रश्न भेजा, जिनका उत्तर नीचे लिखता हूं।

शंका—परोपकारिणी सभा ने समाधान के बारे में २०-६-६२ के पोस्टकार्ड में लिखा पण्डितों से पूछताछ करें कि इस का समाधान क्या है ? इस पर मैं ने सार्वदेशिक सभा को ५-१०-६२ को अपना समाधान "इन ऋषियों ने वेदार्थ का विशेष तौर पर समझ कर प्रथम ही अपने आचरण में लाये" भेज कर प्रार्थना कि

विद्वानों से पूछ कर मुझे लिखने की कृपा करें ? कोई उत्तर नहीं आया।

[क] मुझे ख्याल हुआ कि स्वामी जी के हस्त लिखित तथा छापे में कुछ भेद हो। परन्तु परोपकारिणी सभा के पत्र ६०-६ १६२० दिनांक २०-४ ६२ से ज्ञात हुआ कि कोई भेद नहीं।

[ख] पं० वीर सेन जी, वेद शास्त्री ने इन्दौर से १३-१०-६२ को यह समाधान किया "सृष्टि के आदि में परमात्मा ने ऋषियों को वेदज्ञान दिया। उनके द्वारा वेदज्ञान जनता में प्रचलित था। गुरु शिष्य परम्परा से अध्ययना ध्यापनद्वारा वेद ज्ञान प्रचलित होते हुवे भी जिन ऋषियों ने सर्वप्रथम जिस जिस वेद मन्त्र का समाधिज ज्ञान द्वारा महान् अर्थ की प्राप्ति या साक्षात्कार किया अथवा मन्त्र का दर्शन या उस अर्थ की व्याप्ति का चित्त में यथावत दर्शन किया वे उस उस मन्त्र के ऋषि कहलाये अर्थात् योगसाधन परम्परा से जिन्होंने मन्त्रों का प्रथम साक्षात्कार किया वे उनके ऋषि हैं। जिन ऋषियों ने बाद को दर्शन किए और उन मंत्रों का दर्शन पहले किसी ने कर लिया था वे उस मन्त्र के ऋषि नहीं कहलाये लौकिक उदाहरणः—वासकोदीगामा ने भारत की प्रथम खोज की ऐसा कहा जाता है। इससे यह नहीं माना जाता कि उससे पूर्व भारत था ही नहीं। या वहां कुछ नहीं था। इस प्रकार ४ ऋषियों के द्वारा वेदज्ञान यहां प्रचलित होते हुवे भी जिन ऋषियों ने अपने तपोबल से वेद-मन्त्रों का दर्शन किया वे इस परम्परा में ऋषि थे। १०-१२-६२ को इस की नकल परोपकारिणी सभा को भेज कर लिखा कि मैंने सार्वदेशिक सभा को भी लिखा था पर उनका कोई उत्तर आया, यदि इस बारे में आप के ज्ञान में किसी विद्वान द्वारा पूछा हुआ है तो मुझे लिखने की कृपा करें।

मुझे खेद है कि किसी सभा ने भी कुछ उत्तर नहीं दिया। आर्यगण विचारें कि एक स्वाध्यायी जिज्ञासु को इन सभाओं के सहयोग के अभाव से कितना भटकना पड़ता है। पहले ही महायज्ञ (ब्रह्मयज्ञ) में स्वाध्याय का आदेश कैसे पूरा होगा।

वेद मन्त्रों पर लिखे ऋषि नामों के सम्बन्ध में एक और बात भी उल्लेखनीय है और वह यह कि स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने अपनी पुस्तक वैदिकवन्दना में कई स्थानों पर इन ऋषि नामों के यौगिक अर्थ किये हैं और पुस्तक प्राक्कथन में लिखते हैं कि इन नामों के यौगिक अर्थों से मन्त्रार्थ में बड़ी सहायता मिलती है। क्या स्वामी जी ने भी ऐसी बात कहीं लिखी है ? या यह समझें कि वह इस बात से अनभिज्ञ थे। मैं २२-११-६३ को सार्वदेशिक सभा के कार्यालय में और प्रश्नों के साथ इस प्रश्न को भी लिखकर दे आया था, अभी तक इसका कोई उत्तर नहीं आया। म०प्र० १-१-६४

सप्तम् समुल्लास का एक और प्रश्न भी उपस्थित है वह फरवरी १९६६ के विश्व ज्योति में छपा था और श्री सम्पादक जी ने वेद स्वाध्याय शीर्षक लेख के नीचे नोट छाप दिया था कि समाधान मुझे १०० सी तिमारपुर दिल्ली के पते पर भेजा जावे। परन्तु किसी ने भी उत्तर भेजने की कृपा नहीं की।

सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास में लिखा है कि वेद चार ऋषियों पर इस लिये प्रकट हुए कि वे ही चार सब जीवों से पवित्र आत्मा थे अन्य उनके सदृश नहीं थे।

इससे पहले मनु. १।१३ का हवाला देकर लिखा है कि ब्रह्मा ने इन चारों ऋषियों से चारों वेद प्राप्त किये।

अब प्रश्न यह है कि जब पहले कोई एक ऐसा पवित्र आत्मा न था जिस पर चारों वेद प्रकट किये जा सकते तो फिर ब्रह्मा की शक्ति क्या इतनी बढ़ी हुई थी कि वह चारों का भार अकेला उठा सका, फिर उसके पीछे के लोग तो और भी कम बुद्धि वाले और कम पवित्र समझे जाते हैं किसी एक व्यक्ति से कैसे आशा की जा सकती है कि वह चारों वेदों का अर्थ सहित पारायण कर सके ?

मैंने यह प्रश्न श्री नरदेव शास्त्री जी वेदतीर्थ को लिखा था उन्होंने उतर दिया कि पृथक-पथक् विषय के कारण वेद चार ऋषियों पर प्रकट हुए। यह उत्तर मेरे दिल नहीं लगा, क्योंकि प्रत्येक वेद में विविध विषय हैं दूसरे यदि उनका उतर ठीक मान भी लिया जावे तो मेरा प्रश्न ज्यों का त्यों खड़ा रहता है कि जब पहले एक ऋषि चारों विषयों के समझने को असमर्थ था तो पीछे ऐसा क्यों कर पैदा हो सकता है ?

अष्टम समुल्लास

७६ पृ १३३ 'सुपर्ण' के अर्थ स्वामी जी ने चेतनता और पालनादि गुणों से ग्रहण किये हैं सुपर्ण के धातु अर्थ से सुकाशित करके समझाने की कृपा करें क्योंकि सुपर्ण के अर्थ अच्छे परों वाले होने से शरीर में घट सकते हैं न कि आन्तरिक गुणों के—

पक्ष। 'पृ' धातु से, जिस का पालन और पूर्ण करना अर्थ

है, सु उपसर्ग लगाकर सुपर्ण शब्द बना है। अतः चेतना और पालनादि गुण अर्थ करना सर्वथा संगत है। पंख भी पक्षी के पालन और पूर्ति में सहायक हैं। अतः इन्हें भी सुपर्ण कहा जाता है—

७७ पृ १३३ सा अः १ सू ६१ प्रकृति से बुद्धि उससे अहंकार शंका अहंकार से क्या अभिप्राय है? अहं बुद्धि में? यदि ऐसा है तो मैं से जीव मानोगे परन्तु उसकी तो अनादि अलग सत्ता है?

उत्तर—अहंकार का अभिप्राय जीव नहीं अपितु अपनी सत्ता की विशेष प्रकार की अनुभूति। बुद्धि की रचना के पश्चात् इस स्थिति की अनुभूति सर्वथा संगत है।

प्रतिशंका—आप के लेख 'अपनी सत्ता की विशेष प्रकार की अनुभूति' को मैं ठीक तौर पर समझ नहीं सका यह अनुभूति जड़ पदार्थ में तो हो नहीं सकती अन्तः करण चतुष्टय में मन, बुद्धि चित अहंकार कहे गये हैं। इनमें से मन बुद्धि तो भौतिक हैं।

चित (चेतना) तथा अहंकार (आप के शब्दों में अपनी सत्ता की अनुभूति) यह जड़ पदार्थ में नहीं हो सकती। [चेतना] तथा अहंकार [आप के शब्दों में अपनी सत्ता की अनुभूति] यह जड़ पदार्थ में नहीं हो सकते। चेतन है तो जीव के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? इस को पुनः गम्भीरता से विचार करें इस अहंकार और अन्तः करण चतुष्टय वाले अहंकार में क्या भेद है?

प्रतिशंका ७७ आप के लेख 'अपनी सत्ता की विशेष प्रकार

की अनुभूति मैं ठीक तौर पर समझ नहीं सका । अनुभूति जड़ पदार्थ में तो हो नहीं सकती । अन्तः करण चतुष्टय में मन, बुद्धि, चित अहंकार गये हैं इन में से मन, बुद्धि तो पायव हैं चित [चेतना] तथा अहंकार [आपके शब्दों में अपनी की अनुभूति] यह जड़ पदार्थ में नहीं हो सकते । चेतन है तो जीव के अतिरक्ति क्या हो सकता है ? इसको पुनः गम्भीरता से विचारने की कृपा करें ! आप के विचार में इस अहंकार में और अन्तः करण चतुष्टय वाले अहंकार में क्या भेद है ?

समाधान ७७ अहंकार के दो भेद हैं एक भौतिक पदार्थों विभेद करने वाला और दूसरा अन्तः करण वाला अहंकार जो अपनी सत्ता को 'त्वम् से भिन्न करता है।

मेरा नोट सृष्टि उत्पत्ति विषय में अहंकार प्रकृति की विशेष स्थूल अवस्था का नाम है भौतिक पदार्थों में भेद करने वाला नहीं प्रत्युत मनुष्यों के लिये भौतिक पदार्थों में विभेद का ज्ञान देने का एक stage स्थान का पड़ाव है । वियोग संयोग ईश्वर करता है । इस अहंकार को अपनी सत्ता की विशेष अनुभूति का सिद्धान्त मेरे दिल नहीं लगा ।

७८ पृ १३३ पांच तन्मात्राओं से पृथवी आदि पंच भूत। शंका पांच भूतों में आकाश भी गिना जाता है। इसके पूर्व अन्यत्र काल, दिशा आकाश को और पृ० १३८ पर भी आकाश को अनादि लिखा। अनादि की उत्पत्ति किसी से नहीं मानते। यहां पांच तन्मात्राओं से कैसे माने ?

उत्तर कारण रूप आकाश नित्य है किन्तु कार्य रूप आकाश घर मठादि का तो उत्पत्ति और नाश वाला है ही ।

नवम समुल्लास

७८ पृ १५४ ऋ १.२४.१२

शंका—इन मंत्रों में कौन से शब्द हैं जिन का अर्थ मुक्ति का सुख भुक्ता कर किया यदि कहो 'अमृतान्' तो आत्मायें अमृत हैं ही। साधारण आवागमन क्यों न समझा जावे और फिर अमैथुनी सृष्टि में ऋषि और अन्य जन होते हैं वह तो माता पिता को नहीं देखते अतः यह वेदमंत्र पूर्णतया लागू न हुवे

७८ उत्तर- इस मंत्र में कोई शब्द ऐसा नहीं जिसका अर्थ मुक्ति का सुख भोग कर बनता हो। किन्तु यह बात अर्थापत्ति से बहुत ही स्वाभाविक रुप से आजाती है प्रश्न है हम वर्तमान स्थिति में कहा से आये और हमें लाने वाला कौन है इसका उत्तर स्वाभाविक यही होगा कि हम इस आवागमन के चक्कर में मुक्ति के पश्चात आये और यह व्यवस्था उस परमेश्वर की है।

अमैथुनी सृष्टि में भी माता पिता तो होते ही हैं। चाहे माता पृथ्वी हो और पिता स्वयं परमात्मा। जिस प्रकार माता पिता मिलकर बच्चे को जन्म देते हैं। ये सब निमित्त प्रभु की व्यवस्था से पृथ्वी में उपस्थित हो जाते हैं। और फिर माता पिता के दर्शन करना यह तो बात कहने का एक प्रकार मात्र है ? अभि प्राय तो संसार में आने का है

पृ १५६ मुक्ति के चार साधन कहे, क्या प्रत्येक पृथक् पृथक् होने से एक को अपना लेना है या सब का समूह रुप से ग्रहण करना है ? यदि समूह रुप से मानें तो वैराग्य की परिभाषा में पृथ्वी से ले के परमेश्वर पर्यन्त सब पदार्थों का गुण कर्म

स्वभाव जानना लिखा हैं यह असम्भव प्रतीत होता है फिर तो कोई भी मुक्त नहीं हो सकता —

८० मोक्ष के सभी साधनों पर आचरण आवश्यक है पृथ्वी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त परमात्मा के गुण, कर्म स्वभाव के ज्ञान से अभिप्राय यह है कि जितनी वस्तुए हमारे व्यवहार में आवें हम उनका विवेक पूर्वक उपभोग करें। हेय को छोड़े और उपादेय को ग्रहण करें। तत्त्व ज्ञान ही निः श्रेयस का साधन है।

नोट:—मुक्ति विषय में एक आवश्यक प्रश्न रह गया है। मैं पाठकों का ध्यान प्रतिशंका :—

५१ की ओर दिलाता हूं जो निरुत्तर रह गई और शंका ७६ में भी ध्यान नहीं दिया गया है। मुण्डक के शब्द परान्तकाले को पण्डित जी ने मुक्ति के समय को आधार माना था। मैंने इसका अर्थ कई पण्डितों से पूछा है उनको डिक्शनरी में भी नहीं मिला श्री स्वामी जी ने जो अवधि लिखी है वह गणना करने से ३११०४००००००००००० वर्ष बनती है इसके आधार का भी अभी कुछ पता नहीं लगा कई विद्वान उस कल्पान्त तक मुक्ति की अवधि मानते है। मैं ने यह प्रश्न सार्वदेशिक सभा को भी लिखा था अभी तक कोई उत्तर नहीं आया। ❀

नोट ।। आठवें समुल्लास में संकेत किये—

❀ नोट:—शंका ५१ में लिखा था कि

श्रीनारायण स्वामी जी 'परान्त काल' का अर्थ प्राणान्त काल करते हैं। अब श्री सातवलेकर जी का मुण्डक भाष्य पढ़ा। उस के पृ १८ पर इस मंत्र की व्याख्या में लिखा ऐसे आदर्श पुरुष मरने पर अखंड ब्रह्मलोक में, [परान्तकाले] परले अन्तकाल तक श्रेष्ठ अमृत को प्राप्त करके पूर्ण स्वतन्त्र होकर विचरते हैं

नोट:—आठवें समुल्लास में सकेत किये।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेदोत्पत्ति विषय में मनु अध्याय १ श्लोक ६८-८० तथा सूर्य सिद्धांत के अध्याय १ श्लोक १८-१६ के आधार पर और यजुर्वेद के प्रमाण से सृष्टि की आयु की गणना ३११०४०००००००००० मानव वर्ष दिये सत्यार्थप्रकाश में मुण्डक के हवाले से जो गणना विधि दी है उसका परिणाम भी यही निकला है। मुण्डक के हवाले के नीचे आरंभ में लिखा-'पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं। आखिर में लिखा कि इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है! दोनों को इकट्ठा पढ़ने से परिणाम यह निकलता है कि कल्पांत पर जिस जिस मुक्त जीव के ३११०४०००००००००० वर्षों में से जितने वर्ष मुक्ति में रहने के शेष निकलेंगे वह दूसरी सृष्टि [कल्प] में पूरे करेगा। इस तरह कल्पान्त तक ही मुक्ति मानने वालों की बात टूट जाती है। ❀

८१ पृष्ठ १६० जब धर्म अधिक और अधर्म न्यून होता है। तब देव अर्थात विद्वानों का शरीर मिलता है।

शंका—विद्वानों का शरीर साधारण मनुष्य शरीर से क्या विशेषता रखता है 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् "पर स्वामी जी की व्याख्या पढ़ें अष्टावक्र के शरीर तथा मनु के 'जन्मना जायते

❀ नोट:—आचार्य प्रिय व्रत जी अपने वेद ८.१.६४ में उपरोक्त गणना की सुगम विधि बताकर लिखते हैं "स्वामी जी गणना हिसाब से यही बड़ा अन्तकाल मानते हैं और इसको ही और मुक्ति की अवधि मान लिया है यद्यपि स्वामी जी की अपनी अर्थ शैली है। मंत्र के शब्दों का अर्थ स्वामी जी के अर्थ के साथ अधिक मेल खाता है। दूसरे भाष्य कारों ने दूसरा अर्थ किया है।

शूद्र' का भी ध्यान कर ले। मैं तो इसके अर्थ यह समझता हूँ कि अगला जन्म उसका विद्वान् के घर होगा।

८१ विद्वानों के शरीर से अभिप्राय यह है कि वह जीव उस शरीर को धारण करके विद्वान बनता है। शरीर की अपनी पृथक से कोई विशेषता नहीं। विशेषता तो विद्वत्ता की है। विद्वान के घर उत्पन्न होना कोई विशेष बात नहीं जब तक कि वह स्वयं विद्वान न बन जावे। और यह आवश्यक नहीं कि विद्वान की सन्तान अवश्य विद्वान बनेगी। क्योंकि विद्वानों की सन्तान भी मूर्ख देखी जाती है।

८२ पृ १६० स्त्री पुरुष के रज वीर्य्य बराबर होने से नपुसंक होता है।

शंका नपुसंक के नाम करण यज्ञो पवीत वेदारंभ तथा सोशल उद्धार के लिये कुछ नहीं लिखा। आर्य समाज तथा सरकार को भी इधर ध्यान देना चाहिये नपुसंक होना किस पाप का फल है यह भी नहीं लिखा मेरा अनुमान सुन लो, जो लोग बिना समागम के अपने हाथों ब्रह्मचर्य का नाश करते है उनको यह दुःख मिलता है

उत्तरः—कोई विशेष बात नहीं।

दशम समुल्लास

८३ पृष्ठ १६५ मनु २/११ की व्याख्या में लिखा -

(क) 'वेदानुकूल आप्त पुरुषों का असम्मान भी'।

(ख) वेद निन्दक नास्तिक है उसको जाति देश से बाहर कर देना चाहिये।

शंका:—(क) मनु के किन शब्दों का यह अर्थ है।

(ख) इसके लिये कोई वेद का प्रमाण भी ढूंडना चाहिये। क्योंकि आर्य्य हिन्दुओं की परम्परा बुद्ध, कपिल आदि को नास्तिक समझते हुवे भी सम्मिलित रखने की ही है। यदि कोई वेद मन्त्र न मिले तो इस श्लोक को प्रक्षिप्त समझा जावे।

उत्तर:—८३ श्लोक में 'बहिष्कार्य्य' शब्द है।

(क) नास्तिक को उसके अनुचित आचरण का कुछ तो दण्ड मिलना ही चाहिये।

(ख) कपिल और बुद्ध तो नास्तिक थे ही नहीं।

प्रतिशंका:—(क) यहां आचरण का प्रश्न नहीं मन्तव्य का प्रश्न है। उसके लिये आपस में वाद विवाद की आवश्यकता है। मुसलमानों के विचारानुसार कुरान को न मानने वाला काफिर वाजिबुलकतल है। इस बात पर हम आर्य लोग आक्षेप करते है। विचार की भिन्नता से दण्डनीय नहीं होना चाहिये।

(ख) 'कपिल और बुद्ध नास्तिक थे ही नहीं' मेरी शंका इस बात पर नहीं है। मेरा कहना तो यह है कि स्वामी जी से पहले आर्य-हिन्दु इनको नास्तिक मानते हुवे भी इनका बहिष्कार नहीं करते थे। विचार स्वतन्त्रता थी। प्रसंग वश यह भी जितला दूं कि स्वामी जी ने बुद्ध को सत्यार्थ प्रकाश में नास्तिक ही माना है।

८४ पृष्ठ १६६ (क) मनु २/६५ के आधार पर लिखा है कि ब्राह्मण के सोलवें क्षत्रिय के २२ वें और वैश्य के २४ वें वर्ष में केश कर्म और मुण्डन हो जाना चाहिये अर्थात इस विधि

के पश्चात केश न रखना और शीत प्रधान देश में जितने चाहें रखें और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा (याद रहे कि संस्कार विधि चूड़ा कर्म में शिखा रखने का कोई विधान नहीं मे सं) सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिर में बाल रखने से बुद्धि कम हो जाती है। दाढ़ी मूंछ रखने से भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालों में रह जाता है।

शंका:—(क) श्री स्वामी जी संस्कार विधि वेदारम्भ में मनु के आधार पर 'क्षौर मत करो' ऐसा लिखते हैं और अथर्व का ११ सू ५ मं ६ का हवाला देकर ब्रह्मचारी को 'दीर्घश्मश्रु' अर्थात पक्षकेशी होना लिखा।

(ख) मैंने किसी वेद में पढ़ा हुवा है कि शेर चीते बाघ की तरह केश मूछें रखने से ब्रह्मचर्य ठीक रहता है आर्य विद्वान खुद ही दोनों लेखों का समन्वय करें। फिर विवाह में १६,२४ वर्ष की कन्या के २४ और ४८ वर्ष के पुरुष के साथ बल-बुद्धि समान मानकर ही दोनों का मेल लिखा है। पंजाब में कन्या को धी (बुद्धि) कहते हैं सब कन्यायें केश रखती हैं फिर कैसे मानें कि बालों से बुद्धि कम होती है।

(ग) पहिले वनवासी ऋषि, राम लक्ष्मण की तस्वीरें जटा जूट ही देखी जाती हैं। सन्यासी महानुभाव सर्दियों में केशों से लाभ उठावें रुण्ड मुण्ड रहने से पगड़ी आदि का प्रयोग करना पड़ता है पब्लिक का खर्चा बचावें।

खाने के पश्चात हाथ मुंह धोने, कुरला आदि करने तथा परने या तौलिये से इन अङ्गों की सफाई का रिवाज है ही अतः उच्छिष्ट रहने की कोई सम्भावना नहीं।

उत्तर:—८४ यह शंका 'केशान्त' शब्द का अर्थ न समझने के कारण हुवी है। इस शब्द का अर्थ उपनयन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालक का समय पर यज्ञोपवीत न हो तो ब्राह्मण का सोलहवें, में अवश्य हो नहीं तो फिर वह व्रात्य बन जायेगा इसी प्रकार क्षत्रिय २२ और वैश्य २४।

(क) केशों के विषय में श्री स्वामी जी का भाव केवल इतना है कि उस में कोई धर्माधर्म नहीं है; जैसे चाहे वैसे रखे।

प्रतिशंका:—यह ठीक सिद्धान्त नहीं है। मैं भी ऐसा ही मानता हूं पर मैं आपका ध्यान स्वामी जी के इन शब्दों की ओर दिलाता हूं 'इस विधि के पश्चात केश न रखना'। अगली दोनों बातें अपवाद रूप में हैं।

उत्तर:—बात केवल इतनी है कि जल वायु और स्वास्थ्य को देखकर बाल रखे अथवा कटवावे। यह किसी भी, आश्रमी के लिये अनिवार्य नहीं है।

उत्तर:—८४ ख (१) इस समुल्लास में गृहस्थियों के सामान्य आचार का वर्णन है ब्रह्मचारी का नहीं वानप्रस्थी का नहीं। प्राचीन युग में भी दाढ़ी जटाएं ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी ही रखते थे गृहस्थी नहीं। जो बाधाएं श्री स्वामी जी ने दाढ़ी में बताई हैं वह तो प्रत्यक्ष हैं। फिर भी कोई रखना चाहे तो ऐच्छिक है इसके लिये स्पष्ट 'कामाचार' शब्द पड़ा है।

उत्तर:—८४ ख (२) बाल रखने से ब्रह्मचर्य ठीक रहता है। यह समझ में आने वाली बात नहीं है।

मेरा उत्तर:—यह बात मैं ने अपनी ओर से तो लिखी नहीं

वेद के आधार पर लिखी है वह वेद मन्त्र आप भी ढूंढे मैं भी ढूंढूगा नोट मैंने ढून्ढा अभी तक नहीं मिला में.सि. २-१-६४।

पण्डित जी का उत्तर केश रखने के विधान वाला वेद मन्त्र यजु १६/६२ इस प्रकार है।

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्र लोम। केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि॥

हे मनुष्यो जिसके आत्मा में, समीप स्थिति होने में, भेड़िये के बालों के समान, वा शेर के बालों के समान, मुख पर दाढ़ी और मूंछ, शिर में बालों के समान शिखा, सिंह के बालों के समान कान्ति तथा श्रोत्र आदि शुद्ध इन्द्रियां हैं, वह कीर्ति और लक्ष्मी के लिये प्राप्त होने को समर्थ होता है।

किन्तु है यह सब ऐच्छिक क्योंकि इस प्रकार के मन्त्र भी हैं 'यत्क्षुरेण मर्चयत' आदि जिनमें मुण्डन का विधान है शिखा का भी विधान है। यदि जटा ही हों तो फिर शिखा का प्रश्न ही को ध्यान में रख कर जैसा, अनुकूल हो वैसा करें।

मेरा नोट केशों के विधान के लिये अथर्व ६-१३६-२ तथा ६-१३७-२ का भी पता लगा है।

संस्कार विधि चूड़ा कर्म में शिखा का कोई विधान नहीं 'यत् क्षुरेण' वाला पाठ वेद मन्त्र नहीं वहां आश्वलायण १-१७-१५ लिखा है शब्द इस प्रकार हैं। जितने केश रखने हों उतने ही रखें। परन्तु पांचो ओर थोड़ा थोड़ा केश रखावें (पटे समझ लो म० स०) अथवा किसी एक ओर रखे (कर्जन फैशन या कुछ समझें म० स०) अथवा एकवार सब कटवा देवे पश्चात् दूसरी बार केश रखने अच्छे होते हैं। इसी आधार पर किसी भगत ने कहा है 'भावें लाम्बे केश रख भावें घरह मुना'। अर्य विद्वान शिखा का वेदमन्त्र ढूंढे।

उत्तरः—८४ ख (३) बालों से शिर में गर्मी भी होती है इस से मनुष्य की सोचने की शक्ति पर भी प्रभाव पड़ता है।

मेरा उत्तरः—यदि केशों की गर्मी के कारण विचार शक्ति पर प्रभाव पड़ता है तो ब्रह्मचर्य तथा वानप्रस्थ आश्रम (दोनों में पठन पाठन का काम रहता है) में इनका रखना प्राचीन काल में क्यों माननीय ठहराया गया ?

८५ पृष्ठ १६८ शूद्र के घर का अन्न बिना आपत्काल न खावे। शुद्र मुख पर पट्टी बान्ध आर्यों के घर अन्न पकावें।

शंकाः—श्री स्वामी जी की परिभाषा में शूद्र अनपढ को कहते हैं अनपढ स्त्रियां क्या भोजन नहीं पकाती अनपढ वैसा ही साफ सुथरा रह सकता है जैसे पढ़ा हुवा फिर यह भेद भाव क्यों ? खास करके जब पृष्ठ १७१ पर लिख दिया कि द्विज और शुद्र भी मलीन मुत्र विष्टादि के संसर्ग से उत्पन्न हुवे शाक फल मूलादि न खायें। पृष्ठ १६८ पर नीचे जाकर किसी भी खाद्य पदार्थ को शुद्ध नहीं माना। ऐसा लिखने से ऊपर लिखा भेद भाव कुछ अर्थ नहीं रखता दोनों बातों की संगति लगाना चाहिये।

नोट शूद्र की ठीक परिभाषा समझ में नहीं आई कहीं आर्यों में गिना जैसे यहां अलग जैसे 'उत शूद्रे उत आर्ये'।

उत्तरः—यहां शूद्र वर्तमान प्रचलित अर्थों में है यह आशय से स्पष्ट है। भोजन का निषेध भी मलिनता के कारण किया। वैसे तो शुद्र का है ही सेवा काम।

८६ पृष्ठ १७२ यहां पर शहद दूध आदि के जूठा हो जाने

को जूठा न होने के बराबर सिद्ध कर गये परन्तु पृष्ठ १०० पर इनके साथ और पदार्थों को भी जूठा और गन्दा गिन कर शूद्रों से आर्य्यों के घर में रसोई बनवाने के हक में दलीलदे गये एक ही बात को जब जिधर चाहा लगा दिया।

उत्तर:—जूठन का निषेध स्वास्थ्य विज्ञान के आधार पर किया है। जहां रोग के संक्रमण की सम्भावना नहीं है वह ग्राह्य है।

एकादश समुल्लास

८७ पृष्ठ १८६ श्री शंकराचार्य जी के बारे में लिखा—

'अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्म की एकता जगत मिथ्या शंकराचार्य का निज मत था तो वह अच्छा मत नहीं और जो जैनियों के खन्डन के लिये उस मत का स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा था'।

शंका—स्वामी जी ने इससे ऊपर शंकर को विष देने वालों को कपट मुनि लिखा है। क्योंकि वह ऊपर से वेद मत और भीतर से जैन थे इस कसौटी अनुसार शंकर को भी कुछ अच्छा के स्थान में कपट मुनि लिखना था परन्तु चूंकि शंकर सन्यासी थे और विद्वान भी, स्वामी जी पक्षपात में फंस गये या यूं समझो कि वेद मत कुछ रक्षा के ख्याल से इस कपट को कुछ अच्छा कह गये दोनों ही सूरतों में यह नीति सराहनीय नहीं है।

समाधान—८७ वास्तविकता है कि स्वामी शंकराचार्य

आस्तिक थे। उन्हें ईश्वर और वेद मर्यादा पर आस्था था। उनके समय जैन मत का बोल बाला सारे देश में हो रहा था। अनीश्वरवाद मूर्ति पूजा आदि का जोरों से प्रचार था। शंकराचार्य जी विद्वान सन्यासी थे। पाखन्ड खण्डन व वेद मर्यादा के संस्थापन का व्रत लेकर दिग्विजय के लिये निकले जिस प्रकार योग्य डाक्टर रोगी के अन्दर विषानक तत्व को निकालने के लिये विषाक्त विरोधी तत्व औषधि रूप में देकर प्रथम रोग को दूर करता है फिर धीरे २ कमजोरी आदि छोटी मोटी स्थितियों को संभालता ही रहता है। स्वामी दयानन्द जी के विचार में यदि शंकराचार्य जी ने नास्तिक जैनियों के समक्ष एकेश्वरवाद व वेद मत संस्थापन के भाव से जैनियों की मान्यता वाले सिद्धान्त जीव प्रकृति के अनादि होने का प्रबल खण्डन व 'एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म' 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' आदि सूत्रों के साथ वेदान्त मत को अपनाया हो तो सामयिक व अस्थाई रूप से कुछ उचित माना जा सकता है उपचारी के रूप में। पर यदि सिद्धान्त के रूप में वह इस मत के पक्षपाती थे तो जैन वाद ईश्वर' जीव प्रकृति के सिद्धान्त के प्रतिकूल होने से सर्वथा निन्दनीय, अग्राह्य व अवैदिक है। यही कपट नहीं युद्ध कालीन (शास्त्रार्थ युग की) व्यवस्था मात्र भी हो सकती है। क्योंकि शंकराचार्य जी को बहिस में अवकाश नहीं मिला। जिन जैनियों को स्वामी जी ने कपट मुनि लिखा है वह तो वस्तुतः हत्यारे थे। उनका व्यवहार तो स्पष्ट कपट पूर्ण था।

स्वामी जी ने विद्वान व सन्यासी के नाते शंकराचार्य जी का पक्षपात नहीं किया क्योंकि उनके मत का प्रबल विरोध करते हुये उनके मत के साथ भावना सम्बन्ध में एक अपवाद का

रखा है। स्वामी जी ने समालोचना में अपने पराये साधू व विद्वान आदि का कोई विभेद नहीं किया।

८८ पृष्ठ २०२,२०३ मूर्ति पूजा के निषेध में कई प्रकार की युक्तियां दी हैं।

शंका—यह युक्तियां सिद्धान्त पर नहीं अपितु कार्य शैली के दोष दिखायें, जो कमो वेश समाज और अन्य सोसाइटियों में भी हैं या हो सकते हैं यह तो डूबते पर यूंही बोझ डालना है कि कहीं ऊपर न उठ सके।

समाधान—८८ स्वामी जी ने मूर्ति पूजा के १६ प्रकार के दोषों को तर्क पूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। किन्हीं परिस्थितियों में से कुछ एक दोष अन्य संगठनों व संस्थाओं में भी आ सकते हैं। जहां कहीं आये हैं उनका वर्णन भी यथावसर स्वामी जी ने कर दिया है। इसमें डुबते को डबोने की भावना से नहीं अपितु डूबते को उभारने व पार निकालने की भावना से सर्वोपकार व उद्धार के लिये लिखा गया है।

८६ पृष्ठ २०४ पर अंगूठा दिखाने वाली बात लिख अनुचित मखौल उड़ाया है (इसको पंजाबी में ओछा हथियार कहते हैं) ऐसे मखौल तो सब अच्छी बातों पर भी हो सकते हैं।

समाधान—८६ आप किसी दिन मन्दिर में जाकर नैवेद्य के समय पुजारी जी को घण्टा या घण्टी बजाते हुवे देखें तो समझ में आजायगा कि किस ढंग से उस हाथ का अंगूठा उठा हुवा निरन्तर हिल रहा होता है। फिर नैवेद्य (भोग) लग जाने के बाद मूर्ति तो कुछ खाती नहीं उसके सामने रखा सब माल

पुजारी व भगत जन स्वयं खा जाते हैं। अब आप ही इस उपहास स्पद घटना व विधि को देखकर क्या सोचेंगे और कहेंगे स्वयं विचारें। इसके साथ ही माता, पिता आचार्य व अतिथि आदि देवों (को भोजन आदि से तृप्त करने आदि) की पूजा का कहीं वर्णन देखकर स्वामी के कथन से निश्चित ही प्रत्येक ज्ञानी सहमत हो जायगा।

९० पृष्ठ २०५ वैराग्य वान और शान्त मय मूर्ति के देखने का प्रभाव जड़त्वपन ही माना-यह बात मेरे दिल नहीं लगी क्योंकि हम भी स्वामी जी तथा अन्य महात्माओं की फोटो अपने कमरों में इस लिये लगाते हैं कि वातावरण सात्विक हो। वैसे स्वामी जी तथा अन्य महात्मा रीढ की हड्डी, नासिका के अग्र भाग, भृकुटी में ध्यान लगाना लिखते हैं यहां आत्मा पर जड़त्व का प्रभाव क्यों नहीं मानते।

समाधान—९० स्वामी जी ने कलात्मक चित्रों व स्थापत्य कला का विरोध नहीं किया। मूर्ति को ईश्वर मान व देवत्व भाव से उसमें मन एकाग्र करने के उसकी रचना व जड़त्वादि जो तत्व उसमें पाये जाते हैं उनका प्रभाव मन व आत्मा पर पड़ने से जड़त्वादि गुण प्राप्त हो जाना अनिवार्य है। घर में लगे चित्रों आदि तथा इन मूर्तियों में मन की एकाग्रता में महान अन्तर है चित्रों में मन एकाग्र नहीं किया जाता अपितु उन के देखने मात्र से उनके जीवन की विशेष घटनाओं व इतिहास का उद्बोधन हो जाता है। योग दर्शन के आधार पर शरीर के विभिन्न अङ्गों पर मन को टिकाने की क्रिया जड़त्व पूर्ण नहीं अपितु शक्ति का केन्द्रीकरण करने के लिये है। यहां भृकुटि आदि अंगों का आकार प्रकार नहीं देखा जाता अपितु केवल मन का स्थिरीकरण मात्र

होता है। जैसे सर्कस आदि में 'बैलेन्स' संभालने वाले अभ्यासी करते हैं। तथा मन तो जड़ ही है।

६१ पृष्ट २३३ गुरु नानक जी का आशय तो अच्छा था परन्तु विद्या कुछ भी नहीं थी।

शंका—यहाँ विद्या शब्द का प्रयोग केवल संस्कृत भाषा के ज्ञानार्थ में किया गया है किसी विशेष भाषा का ज्ञान विद्वान होने का कोई प्रमाण नहीं मैं घोड़े को अश्व बोल दूं तो मेरा वास्तियक ज्ञान कुछ नहीं बढ़ता अतः स्वामी जी का आक्षेप व्यर्थ हैं। शास्त्रानुसार विद्या दो प्रकार की है परा (आध्यात्मिक) अपरा (लौकिक) परा विद्या में गुरु जी कोरी संस्कृत जानने वालों से बहुत आगे थे।

समाधान—६१ स्वामी दयानन्द जी की स्पष्ट समालोचना है। उन्होंने श्री गुरु नानक देव जी के आशय के पवित्र और अच्छा होने की बात कही है। परा विद्या न जानने की बात कहने का तात्पर्य स्पष्ट भाषा ज्ञान से है क्योंकि अगली पंक्ति में श्री स्वामी जी ने लिखा है कि 'वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे इसमें परा तथा अपरा विद्या का तर्क गत जो आपने उठाई है वह इस प्रकरण के साथ जुड़ती नहीं है। विद्वान और बुद्धिमान में कुछ अन्तर है। एक व्यक्ति बुद्धि सम्पन्न होकर भी विद्या व अक्षर ज्ञान से शून्य हो सकता है और एक व्यक्ति विद्या पढ़ कर भी व्यवहारिक दृष्टि से बुद्धिमान नहीं होता। विद्या पढ़कर भी उसका लाभ नहीं उठा सकता इस प्रकरण में स्वामी जी का आशय विद्या अक्षरादि ज्ञान से है।

६२ पृष्ठ २३३ वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे यदि जानते होते तो निर्भय शब्द को निर्भौ क्यों लिखते?

शंका- जप जी जिसके आरम्भ की पौड़ी में यह शब्द आया है संस्कृत भाषा में नहीं लिखी गयी प्रत्युत उस समय की पंजाबी भाषा में अतः स्वामी जी के इस आक्षेप में कोई जान नहीं अध्यात्मवाद में वेदादि शास्त्रों का ज्ञान आवश्यक नहीं माना। जैसे श्री पं०इन्द्र जी अपने ईशो परिषद भाष्य के पृष्ठ१२ पर गीता के आधार पर वेदों को 'त्रैगुण्य विषय' लिखा है तीन गुण (सत्व रज, तम) प्रकृति के हैं प्रभू के नहीं उसी पुस्तक के पृष्ठ ८८ पर मुण्डक उपनिषद का यह मन्त्र दिया है 'वेदितव्ये इति हस्म ब्रह्म विदो वदन्ति परा चैवापराच ऋग्वेदो यजुर्वेदः साम वेदो अथर्व वेदः शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति । अन्या परायया तदक्षरमधिगम्यते' । अर्थात वेदादिशास्त्र अपरा विद्या है दूसरी परा जिससे अविनाशी ब्रह्म जाना जाता है दूसरी साक्षी श्री स्वामी आत्मानन्द जी की है वह अपनी पुस्तक 'मनो विज्ञान तथा शिव संकल्प के श्लोक। पृष्ठ २१२, २१३ पर लिखते हैं:—

(प्रश्न) जो मनुष्य देव वाणि नहीं जानता परन्तु प्रभु चिन्तन में उसका आसन पढ़े लिखे विद्वानों से बहुत ऊंचा है ऐसी अवस्था में तो उसके मन में भी ऋग यजु साम वेद प्रगट हो जाने चाहिये परन्तु वह तो दूसरे के उच्चारण किये गये वेद मन्त्र का अर्थ भी नहीं समझ सकता।

(उत्तर) इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान के ज्ञान की झलक जिस अन्तः करण में पड़ चुकी है उसमें वेद ज्ञान उदय होना चाहिये परन्तु यह कोई आवश्यक बात नहीं कि वेद मन्त्रों के अक्षरों की आनु पूर्वी और उनके शब्दों का अर्थ भी उसे अवश्य ही आना चाहिये। वह अपने अंतः करण में उदय हुवे वेद ज्ञान

को अपनी उस भाषा में जिसे वह जानता है प्रकट कर सकता है।

समाधान—६२ आपकी यह बात कि जप जी साहब तत्कालीन पंजाबी भाषा में नानक जी ने लिखी, जिसमें निर्भय को निर्भो कहा जाता था इसका प्रमाण उस पद के अन्त में पड़ी 'होखी' से मिल जाता है जो आज की पंजाबी में प्रयुक्त है सत्य हैं स्वामी जी ने पहले ही लिख दिया है कि 'हां भाषा उस देश की जो कि ग्रामों की है जानते थे। संस्कृत आदि के विद्वान नहीं थे। यह स्वामी जी का कथन तो आप भी मानते हैं। और यदि जानते होते तो निर्भो को शुद्ध कर निर्भय भी लिख सकते थे। इससे उनके वचन में अशुद्ध या असौन्दर्य न आ जाता। जैसे आज भी पंजाबी जानने वाले अनपढ़ लोग 'मतलब' को 'मतबल' तथा 'चाकू' को 'काचू' कहते हैं। पर पढ़े लिखे शिक्षित लोग पंजाबी बोलते हुवे भी शुद्ध शब्द 'मतलब' व 'चाकू' का प्रयोग करते हैं। इससे पंजाबी का स्वरूप बिगड़ता नहीं प्रत्युत परिमार्जित (शुद्ध) व सुन्दर हो जाता है विद्वानों का काम समाज व जन साधारण को शुद्धता व उन्नति की ओर ले जाना होता है। उनके शुद्ध शब्दों व विचारों का प्रभाव धीरे २ जन साधारण पर पड़ जाता है। अतः स्वामी जी की आपत्ति शंका या तर्क प्रभावशाली व सत्य प्रतीत होती है।

आपकी दूसरी बात जो कि स्वर्गीय पं. इन्द्र जी तथा स्व० स्वामी आत्मानन्द जी की पुस्तकों एवं उपनिषद्वाक्यों के आधार पर है कि संसारिक भाषा न पढ़कर भी व्यक्ति अन्तः करण की शुद्धि अभ्यास व समाधि आदि के द्वारा अन्तः करण में ईश्वरीय प्रेरणा व ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानी बन जाता है। और वह तत्व की बातें बता सकता है। सत्य है। १

स्वामी जी ने इस दिशा में नानक जी की प्रशंसा की है तथा लिखा है कि यह सच है कि 'जिस समय नानक जी पंजाब में हुवे थे उस समय पंजाब संस्कृत विद्या से सर्वथा रहित, मुसलमानों से पीड़ित था। उस समय उन्होंने कुछ लोगों को बचाया'। तथा जो नानक जी ने कुछ भक्ति विशेष ईश्वर की लिखी थी उसे करते आते तो अच्छा था'।

इन उद्धारणों से स्पष्ट हो जायेगा स्वामी जी कितने सच्चे समालोचक थे उनका उद्देश्य सचाई को स्पष्ट कर देना था। किसी की निन्दा नहीं। अच्छाई को अच्छाई और बुराई को बुराई बिना किसी भेद भाव के कह देना यह सच्चे सन्त का कर्म है जो महर्षि ने किया है। २

१ नोट:—२ मेरे लेख का उद्देश्य भी यह जितलाना था कि अध्यात्म वाद में संस्कृत का न जानना कोई 'बुराई' नहीं, जानना विशेष गुणकारी भले ही हो। मोहरसिंह २३-९-६२।

६१ पृष्ठ २३१ स्वामी जी लिखते हैं और इसका दृष्टान्त उनका बनाया संस्कृति स्तोत्र है चाहते थे कि मैं संस्कृत में भी पग अड़ाऊं परन्तु बिना पढ़े संस्कृत कैसे आ सकती है।

शंका—गुरुनानक की किसी वाणी का नाम उनके अनुयाइयों में से किसी ने संस्कृति स्तोत्र रख दिया तो इस में गुरु साहब का क्या दोष है। इस तरह उनकी नीयत पर आक्षेप करना उचित न था क्या उनकी जन्म साखी में कहीं लिखा है कि वह संस्कृत जानते थे स्वामी जी की यह Demand वह कि यह भी कह देते कि मैं संस्कृत नहीं जानता अनाखा हूं। यदि संस्कृत बावत लिखते तो अन्य भाषाओं का क्यों न यह बात ऐसे ही है

जैसे हमारे कई उपदेशक सत्यार्थ प्रकाश को समाज की वेदी से पांच वां वेद कहने लग गये हैं और कोई रोक टोक नहीं करता।

समाधान—श्री नानक जी की रचना का नाम 'संस्कृति स्तोत्र' किस ने रखा यह स्वामी जी का विषय या आक्षेप नहीं है। बात तो यह है कि श्री नानक जी संस्कृत जैसे कुछ वाक्य या शब्द बनाकर लोगों को उपदेश दिया जो भाषा की दृष्टि से उत्तम नहीं है। स्वामी जी का कथन है कि जब संस्कृत नहीं जानते थे तो संस्कृत जानने का रूप क्यों लोगों के सामने रखा। यदि उस युग में भी पंडित या साधू को संस्कृत जानना और सम्कृत में मन्त्र व श्लोक बोलना आवश्यक ही था तो नानक जी का सन्त होने के नाते स्पष्ट कह देना चाहिये था कि भाई मैं संस्कृत का विद्वान नहीं हूं संस्कृत नहीं जानता। मैं तो अपने अनुभूतों को साधारण भाषा में आप के सामने पेश कर रहा हूं तो इसमें कोई अपमान या हेठापन नहीं था। इसमें स्वामी जी की यह मांग नहीं है कि अकार्थ ही लोगों से श्रीनानक जी कहते कि मैं संस्कृत या अमुक भाषा नहीं जानता। यह जब है जब कि उन्होंने संस्कृत न जानते हुवे भी संस्कृत में कुछ बोलने का साहस किया।

आपके कथनानुसार यदि कोई आर्य समाजी उपदेशक या कोई भी सत्यार्थ प्रकाश को पांचवां वेद कहता है तो वह अक्षम्य अपराध करता है। वह सामाजिक बहिष्कार आदि दण्डों का भागी है। यह बात व व्यवहार सर्वथा निन्दनीय है।

६५ पृष्ठ २३३-२३४ मेरी समझ में यह निचले दो लेख ठीक नहीं।

(क) वेद पढ़ते ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानी। सुख मनि में नहीं।

(ख) सन्त (साधू) की महिमा वेद न जाने सुखमनि में है तो सही, पर वह गुरुनानक जी ने नहीं उचरी उनके सिर पर अधिक बोझ क्यों डाला गया ?

समाधान—६४, ६५ स्वामी जी ने 'सन्त (साधू) की महिमा वेद न जाने' के आगे ही सुखमनी का हवाला दिया है।

सुखमनी गुरुवाणी है। और समस्त नानक पन्थियों से सम्मानित है इसी लिये उसके उद्धरणों की स्वामी जी ने समालोचन की है जो यथार्थ है।

६६ पृष्ठ २३३ नानक ब्रह्मज्ञानी, आप परमेश्वर।

शंका—समाधान के रूप में जैसे वेदान्त शास्त्र और पातञ्जल योग से ध्याता अपने आपको भूल जाता है और केवल ध्येय रहता है ऐसे ही इस बात को भी समझें। चुनाचे प० इन्द्र जी अपने ईषोपनिषद भाष्य से पृष्ट ११७ पर 'पूषन्नेकर्षे मन्त्र की व्याख्या में लिखते हैं 'अनुभव कर सकूं' कि जो प्राणों में व्यापक ईश्वर है मैं इससे अभिन्न हूं।

समाधान—६६ यह तो साधारण सी बात है कि ईश्वर सर्व व्यापक होने से मुझ में भी है। और सब कुछ ईश्वर में समाया है अतः मैं भी ईश्वर में हूँ। इस से यह कैसे सिद्ध हो जाता है कि मैं वही हूं अर्थात् ईश्वर हूं। मैं तो ईश्वर से भिन्न हूँ जीव। ईश्वर परमाणु में भी हैं और समस्त ब्रह्माण्ड ईश्वर में है। इससे प्रकृति का अस्तित्व तो नष्ट नहीं हो जायेगा, और नहीं हम इस प्रकृति को ही ईश्वर मान लेंगे। फिर आपने यह तर्क देकर

'नानक ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर' को कैसे संगत मान लिया। इसी दोष के कारण स्वामी जी ने शंकराचार्य जी के वेदान्त का घोर खण्डन किया है। अतः इस सम्बन्ध में स्वामी का आक्षेप व पक्ष सर्वथा तर्क पूर्ण व युक्ति संगत है। इस स्थल पर 'आप परमेश्वर' कह कर जो भ्रम जन साधारण में पैदा किया गया उसी का परिणाम था कि दशवें गुरु श्री गोविन्दसिंह जी को लोग परमेश्वर कहने लग गये थे। तभी उन्हें कहना पड़ा था कि

'जो नरमोहि परमेश्वर उच रही, ते नर घोर नरक में परहिं'।

इससे स्पष्ट हो जायगा कि स्वामी जी ने उपरोक्त पद का खण्डन व विरोध क्यों किया था। स्वामी जी की उक्ति छल रहित स्पष्ट एवं जनहित की भावना से युक्त है।

प्रतिशंका—इन्द्र जी के 'पूषन्नेकर्षेयसूर्य—' वेदमन्त्र की व्याख्या में 'अभिन्न अनुभव कर सकूं' आप स्वीकार कर गये (विरोध जो नहीं किया) अब एक और वेद मन्त्र लीजिये। ऋ० ८-४४-२३ यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् स्युष्टे सत्या इहाशिषः। इसमें साफ कहा-कि या मैं तू हो जाऊं या तू मैं हो जा भ्रम डालने वाले तो यह दोनों वेद मन्त्र हैं। सिक्खों के मन में सुख मनि के वचन से यदि कुछ भ्रम हुवा भी था तो गुरुगोविन्द सिंह जी ने अपने उपरोक्त वचन से दूर कर दिया जहां तक गुरु नानक जी का सम्बन्ध है उनकी रचना 'जपजी' के अर्थ 'हे जीव! तू जप' से ही स्पष्ट हो जाता है कि वह जीव को परमेश्वर से भिन्न मानते थे।

इस प्रतिशंका को पढ़ कर भी शास्त्री जी ने कुछ लिखने का कष्ट नहीं किया। इतना ही कहा कि उनका पहिला समाधान ही पर्याप्त है।

९७ पृ० २३३ वेदों की कहीं निन्दा कहीं स्तुति की है वेद पढ़त ब्रह्मा मरे।

शंका—(समाधान के रूप में) श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ति मन्त्री आ०प्र० सभा पंजाब के परामर्श से मैं ने स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की रची पुस्तक सिखो के दश गुरु और आर्य समाज 'पढ़ी उसमें निन्दा का समाधान ऐसे शब्दों में किया है कि चारित्र का ऊंचा होना और ईश्वर भक्ति वेद पढ़ने से अच्छा है प्रमाण रूप में उन्होने 'किं चा करिष्यति' वाला वेद मन्त्र लिख दिया।

समाधान—९७ ब्रह्मचारी वेदों के क्रियाशील विद्वान को कहते अर्थात् 'ब्रह्मन्+आ' जिसके चारों ओर ज्ञान व कर्म में 'ब्रह्म' वेद ओत प्रोत हो जो वेदों का साक्षात्कार किये हुवे हो उसे ब्रह्मा कहते हैं। उन्हें कह दिया कि वेद पढ़त ब्रह्मा मरे बहुत घृणा जनक है (लेख लम्बा है तात्पर्य यही है)।

मैं पहिले ही शंका ९५ में लिख चुका हूं कि 'वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानी' सुखमनी में नहीं है। मेरी दृष्टि में इस आधार पर अधिक वाद विवाद अनावश्यक है।

अन्त में श्री शास्त्री की प्रार्थना करते हैं 'प्रभू सन्मार्ग दें, सुमति दें, जिससे सब वैर विरोध मिटाकर वेद पथ गामी हों परस्पर उन्नति से सुख व ब्रह्मानन्द को भोगें।

उनकी इस प्रार्थना में मैं भी अपने आप को सम्मिलित करता हूँ।

मेहरसिंह यमतोल

तीमारपुर २४-८-६२

द्वादश समुल्लास

शंका—६८ पृष्ठ २६६, स्वामी जी का जैनियों पर आक्षेप है 'हरित शाक खाने में जीव का मारना मन को पीड़ा पहुँचना क्यों कर मानते हो? भला जब तुम को पीड़ा प्राप्त होती नहीं दीखती यदि जो दीखती है तो हम को भी दिखलाओ, तुम कभी न प्रत्यक्ष देख न हम को दिखा सकोगे'।

स्वामी जी की यह दलील दिल नहीं लगी क्यों कि हम भी ईश्वर की सिद्धि में न दीखने की बात को इसी दर्द या भूख न दीखने वाली बातों का उदाहरण देते हैं।

उत्तर—उक्त प्रकरण को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी ने अनुभूति की बात कही है। दर्शन शास्त्र की व्यवस्था के अनुसार समस्त प्रमाण प्रत्यक्ष पर आधारित हैं। ईश्वर निराकार व सर्व व्यापक विभू है। अत: उसकी सिद्धि में दिया गया तर्क प्रत्येक स्थान पर लागू नहीं किया जा सकता। जीव एक देशी है इसका व्यापार सीमित है फिर औषधि वनस्पतियां आदि स्थूल हैं दिखाई देती हैं उनके सम्बन्ध में वर्णन व आक्षेप प्रसंग वश समुचित है। पुनः उस प्रसंग को पढ़ने से स्पष्ट हो जायेगा।

प्रतिशंका—मेरा भाव यह जितलाने का है कि किसी बात का अस्तित्व उसके 'प्रत्यक्ष दीखने पर ही आधारित नहीं होता। स्वामी जी का जैनियों से इसी प्रत्यक्ष दिखाये जाने का आग्रह उचित प्रतीत नहीं होता आप इसके औचित्य की पुष्टि कर सकते हों तो करें।

प्रत्युत्तर-प्रत्यक्ष प्रमाण और प्रमाणों का आधार है क्योंकि

अनुमान, उपमानादि प्रमाण अन्यान्य अनुभूतियों के आधार पर ही व्यवहार में लाये जाते हैं। प्रत्येक वस्तु के प्रत्यक्षीकरण, जानने या साक्षात्कार का प्रकार भिन्न भिन्न होता है। उक्त प्रकरण में पीड़ा दिखाने की बात तड़पने आदि क्रिया की ओर संकेत करती है जो जीव धारियों में पाई जाती है। उस क्रिया के प्रत्यक्ष दिखाने का स्वामी जी का तात्पर्य है। ऐसा उक्त प्रकरण के अध्ययन से स्पष्ट होता है।

तेरहवां समुल्लास (ईसाई मत)

६६ पृष्ठ ३०५ आकाश जब नहीं सृजा था तो ईश्वर और जीव कहां रहते थे ? यह स्वामी जी का आक्षेप है।

शंका—सृष्टि उत्पत्ति विषय अष्टम समुल्लास तैतिरीयोपनिषद के तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः के प्रमाण देने के पश्चात 'सूक्ष्म भूतों' की तथा अन्य पदार्थों की उत्पत्ति लिखी ! प्रश्न यह है कि सूक्ष्म भूतों में प्रथम भूत आकाश है। कुरानों के बारे में 'सृजा' शब्द का प्रयोग किया यहाँ उत्पन्न हुवे लिखा, भेद क्या रहा।

समाधान—श्री महर्षि दयानन्द जी ने ईसाइयों के बाइबिल में इस लेख को मिथ्या बताया कि आकाश की रचना ईश्वर ने की। आकाश तो विभू एवं प्रलय में भी सब का आश्रय स्थान है। उक्त प्रमाण के स्पष्टिकरण में स्पष्ट लिखा है 'उस परमेश्वर

और प्रकृति से आकाश अवकाश अर्थात् जो कारण रूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था उसको इकट्ठा करने से अवकाश उत्पन्न होता है। वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि बिना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहां ठहर सके ?

इससे स्पष्ट है कि आकाश उत्पन्न नहीं होता। अतः स्वामी जी की बाइबिल पर समीक्षा सर्वथा उचित है।

१०० पृ० ३०५ पृथ्वी बेडौल पर स्वामी जी का आक्षेप ठीक प्रतीत नहीं होता।

समाधान—समीक्षा सर्वथा स्पष्ट और उचित है 'क्योंकि पृथ्वी बेडौल सृष्टि के आरम्भ में ही क्या आज भी ऊंची नीची पर्वत, तराई, काली, पीली, लाल व नदी नाला आदि से भरपूर है तो उस समय कौन सी नवीन व विभिन्नता थी। स्वामी जी का कथन है कि ईश्वर के सर्वज्ञ होने के कारण सृष्टि में अनियमता नहीं पाई जाती।

१०१ पृष्ट ३१८ पर आक्षेप ४१ दण्ड का तीसरी चौथी पीढ़ी तक जाना।

शक,—तीसरे समुल्लास में मनु २/१६८ 'यो अनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुतेश्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वं आशु गच्छति सान्वयः' की व्याख्या में पुत्र पौत्रादि का भी शूद्र होना लिखा। बाईबिल और मनुः की बात में भेद क्या रहा ?

समाधान—१०१ वस्तुतः बाईबिल का यह दण्ड का ढंग अन्धेर नगरी का सा प्रतीत होता है अपराध कोई करे दण्ड कोई भुगते। हमारे यहां मनु का विधान स्वभाव और पारवारिक संस्कारों पर आधारित है।

१०२ पृष्ठ ३२३, आक्षेप ५६ की समीक्षा में लिखा 'बुद्धि-ज्ञान पर्याय वाची हैं' यह दो मानते हैं।

शंका—(१) मनु के बताये धर्म के दश लक्षणों में 'धी विद्या' अर्थात बुद्धि-ज्ञान अलग अलग हैं। (२) मनु के श्लोक 'अद्भि-र्गात्राणि शुध्यन्ति का अन्तिम भाग 'बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति' दोनों अलग अलग हैं पहिले अपना घर देखें, दूसरों पर यह आक्षेप करना बनता नहीं।

समाधान—बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची अर्थात, समानार्थक एक दूसरे के घटक हैं। 'बुध' का अर्थ बोध और ज्ञान दोनों हैं' इस लिये नीतिकार ने लिखा 'बुद्धि र्ज्ञानन शुद्धयति' से बुद्धि सदा शुद्ध रहती है। यह वैसे ही है जैसे कहते हैं कि 'सूर्य प्रकाश से चमकता है या 'दीपक ज्योति से ज्योतित हैं। इसमें सूर्य व प्रकाश में एकात्मता होने पर भी वर्णन से प्रतीत होता है कि सूर्य व प्रकाश दो भिन्न हैं। ऐसा ही दीपक व ज्योति में भी है। दीप्ति से युत होने से दीपक होता है और दीप्ति व ज्योति एकार्थक हैं। वस्तुतः स्वामी जी को ईसाइयों के इस कथन पर और भी आपत्ति है कि ज्ञान की वृद्धि से दुःख बढते हैं। सभी इसमें एक मत हैं कि ज्ञान की अभिवृद्धि संसार के दुःखों से छुड़ा कर सुख देने वाली तथा मोक्ष का अलौकिक आनन्द देने वाली है अज्ञानता ही सारे दुःखों का मूल है।

अतः स्वामी जी का आक्षेप व लेख तथ्य पूर्ण एवं स्पष्ट है।

प्रतिशंका—आपका उत्तर पढकर भी मैं भगवान मनु के धर्म के दस लक्षणों में धी (बुद्धि) विद्या (ज्ञान) तथा 'बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति' वाले श्लोक में पृथक पृथक उल्लेख को मैं अधिक आदर

देता हूं और पर्याय वाची नहीं मानता क्योंकि बुद्धि साधन है और ज्ञान साध्य है। बुद्धि से शब्दार्थ सम्बन्ध का ज्ञान होता है।

प्रत्युत्तर-तृतीय समुल्लास में मनु के 'अद्भिर्गात्राणि' वाले श्लोक के अर्थ में नीचे स्वामी जी ने लिखा है कि 'ज्ञान अर्थात पृथ्वी से ले कर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि दृढ निश्चय पवित्र होते हैं। (इससे एक नहीं दो ही साबित होते हैं म. स.) धातु पाठ में धात्वर्थ को देखने से भी ज्ञात होगा कि बुद्धि व ज्ञान में विशेष अन्तर नहीं, साथ ही स्वामी जी का उक्त वाक्य भी स्पष्ट है। आपका तर्क इस सीमा तक तथ्य पूर्ण है कि जब शब्द भिन्न हैं तो शब्दार्थ भी भिन्न होना चाहिए, पर सर्वदा सर्वत्र नहीं।

शंका—१०२ पर पं० वीरसैन जी वेदश्रीमी इन्दौर का उत्तरः- 'बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्' यह दर्शन का सूत्र है अर्थात बुद्धि 'उपलब्धि' ज्ञान ये पर्यायवाची हैं (समानार्थक है) अतः जहां बुद्धि को ज्ञान का पर्यायवाची माना है वहां इस नियम से माना है। यहां पर ज्ञान गुण है बुद्धि भी गुणवाची है। द्रव्य वाची नहीं। जब बुद्धि का प्रयोग द्रव्यवाची होगा तब वह ज्ञान से पृथक अर्थ रखता है। तब बुद्धि द्रव्य है और ज्ञान उसका गुण है। मनु के श्लोक में भी द्रव्यवाची है और उसकी साधना से ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः वहां धी और विद्या को यदि सदा ही एक मान लेंगे तो बुद्धि के साथ सभी को सब विद्याओं का स्वतः ज्ञान भी मानना पड़ेगा परन्तु ऐसा होता नहीं अतः धी और विद्या पृथक् भी ठीक हैं।

१०३ पृ ३२५, आक्षेप ६५ (क) आज की रोटी हम को दे।

(ख) पृथ्वी पर धन संचय मत कर।

शंका—हमारे ब्राह्मण भी ऐसे माने जाते थे कि वह आज की रोटी ही का ध्यान रखते थे कल की फिकर न थी। दूसरा अर्थ लें कि रोटी क्यों माँगी खुद क्यों न कमाएं तो 'पतयो रयीणाम्' वाली प्रार्थना का ध्यान करलें (ख) यह ऐसे ही है जैसे हमारे यहाँ 'अपरिग्रह'।

समाधान—संसार में रोटी एवं भोग्य पदार्थों का अपना महत्व है। ईश्वर समस्त संसार एवं सुन्दरतम वस्तुओं के भण्डार का स्वामी है उसके पुत्र होने के नाते हम भी उन समस्त भण्डारों के स्वामित्व के भागी है। प्रत्येक संसारी प्राणी को भोजन, वस्त्र, मकान चाहिये। वर्तमान भविष्य का आधार होता है। अत: त्याग के साथ भोग की भावना के कहीं कहीं इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं कि 'नदी न संचेनीर'। पर जिस प्रकार संसार के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिये रक्त, मांस के भण्डार शरीर को हम सुरक्षित रख कर अपने भविष्य के निर्माण के लिये प्रयत्न शील होते हैं उसी प्रकार संसारिक पदार्थों की प्राप्ति भी आवश्यक है। रही प्रार्थना की बात सो हम सदा ही प्रभू से प्रेरणा प्राप्त कर स्वयं प्रयत्न व परिश्रम करते हैं।

मेरा नोट। जिस तरह मैं ने बाइबल वाक्यों का स्पष्टीकरण किया है उधर पूरा ध्यान न देकर वेद के स्पष्टीकरण की ओर अधिक झुक गये। म० स०

१०४ पृष्ठ ३२५ आक्षेप ६७। मेरा विचार है कि यह नेकी की राह पर लाने के लिये समझाने की विधि रूप है।

समाधान—ईश्वर सदा न्यायकारी है। उसके न्याय दरबार

में किसी प्रकार के सिफारशीयों या पेशकार की आवश्यकता नहीं है। अतः न्याय विशेष के दिन ईसामसीह एक जीव होने के नाते कैसे भले बुरों की छंटनी करेंगे। सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान ईश्वर की सत्ता का यह खुल्लम खुल्ला मखौल है। वथा मूर्खों को बहकाने वाली बात है। रही शिक्षा की बाब उसको और ढंग से भी लिख सकते थे।

अनुभूमिका ४ समुल्लास १४ वां

१०५ पृष्ठ ३४४ इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो वह सज्जन लोग विदित कर देंगे तत्पश्चात यथोचित कर दिया जावेगा।

शंका—अब यह जिम्मेदारी किस पर है ? परोपकारिणी या सार्वदेशिक आर्य प्रति निधि सभा पर ?

समाधान—इस सम्बन्ध में समुचित सम्मति सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा एवं परोपकारिणी सभा द्वारा अधिकार सम्पन्न विद्वत्परिषद ही दे सकता है।

चौदहवां समुल्लास

पृष्ठ ३४५ प्रथम पैरा आरम्भ साथ नाम अल्लाह के। इस पर स्वामी जी का आक्षेप यह पुस्तक यदि अल्लाह की बनाई होती तो ऐसा न होकर ऐसा लिखते कि आरम्भ करता हूँ वास्ते उपदेश—

शंका—मेरा कहना यह है कि यह आक्षेप वेदों पर भी आता है क्यों कि किसी वेद का भी आरम्भ ऐसे शब्दों से नहीं हुवा जिसका तात्पर्य यह निकले कि आरम्भ करता हूं वास्ते उपदेश जीवों के और बीच में भी तीनों पुरुषों (persons) का उपयोग किया गया है जैसे—

(१) सनोबन्धर्जनिता (२) तेजोऽसितेजोहि मयिधेहि (३) वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् यह सब जीव ने कहे हैं ईश्वर ने नहीं।

समाधान—स्वामी जी ने यह प्रतिज्ञा नहीं रखी कि ईश्वरीय ज्ञान वह होता है कि जिसके आदि में यह लिखा हो कि 'आरम्भ करता हूं वास्ते उपदेश मनुष्यों के'। अपितु उन्हें कुरान के आरम्भ करने वाले प्रथम वाक्य के इस कि 'आरम्भ करता हूं साथ नाम अल्लाह के' ऊपर आपत्ति व शंका है कि यह वाक्य ईश्वरकृत नहीं हो सकते। अतः उक्त प्रकरण को ध्यान से पढ़ने से यह स्थिति स्पष्ट हो जायगी। यदि मनुष्यों को ऐसा कहने के लिये लिखा है कि कोई भी कार्य ईश्वर का नाम लेकर आरम्भ करना चाहिये। उद्देश्य तो शुभ कार्य करने का है पर मुसलमान लोग पशुओं आदि के मारने, कुकर्मों के समय भी 'बिसमिल्ला' कह कर उसे हलाल करते हैं क्योंकि खुदा अल्लाह का नाम लेकर कोई कार्य करने पर पाप से व्यक्ति बच आता है। परन्तु ऐसे समय पर भूल जाते हैं कि इसी में (रहमानुल रहीम) दयालुओं का भी दयालु कहा है। निरीह प्राणियों की हत्या दयालुता के सर्वथा प्रतिकुल हैं।

वेद के मन्त्रों में जो प्रार्थनायें व उपदेश हैं वह सभी मानव के उपदेशार्थ हैं क्योंकि वह ज्ञान मनुष्यों के व्यवहार के लिये है।

१०७ पृष्ठ ३४५ काफरों को कतल करो क्यों लिखा ?

शंका—ऐसे वेद मन्त्र भी हैं जिनमें शत्रुओं को मारना लिखा है मनु ने कहा 'नास्तको वेद निन्दक' 'वहिष्कार्य' सिर्फ वेद विरोद्ध मति होने पर देश जाति से बाहर करना क्या मारना नहीं है।

समाधान—हत्या व बहिष्कार में बड़ा अन्तर है। हत्या में उसके पुनः सुधार का अवसर नहीं वहिष्कार में सुधार का अवसर है तथा उसके पुनर्विचार सदाचार आदि द्वारा पुन: साधू व द्विज समाज में सम्मान का पात्र हो सकता है। वेद में शत्रुओं का मारना लिखा (जैसे कृष्ण ने अर्जुन द्वारा महा-भारत युद्ध में करवाया) परन्तु इसलाम के सत्युनुसार जो खुदा, कुरान तथा मोहम्मद जी को पैगम्बर नहीं मानता वह काफिर है और काफिर को कतल करने का आदेश है जरा ध्यान पूर्वक विचारों तो आपको वेदा देश उचित और कुराना देश अनुचित भासने लगेगा।

१०८ पृष्ठ ३५१ अल्लाह खास करता है जिसको चाहता है। साथ दया, अपनी के इस पर स्वामी जी का आक्षेप है 'फिर अच्छा काम कौन करेगा ?

शंका—पं० इन्द्र जी के ईशोपनिषद भाष्य पृष्ठ ७२ पर उपनिषद वाक्य 'यतंवैव वृणुते तेन लभ्य?' अर्थः यह तो उसी को प्राप्त होता है। जिस पर उसकी कृपा होती है जब दोनों ओर एक जैसी बात ही दर्शाई गई है फिर कुरान पर आक्षेप क्यों ?

समाधान—इसमें प्रकरण व वर्णन विधि में स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता है। ईश्वर न्यायकारी है उसकी दृष्टि में खास व आम नहीं है; अत न्याय पूर्वक सब जीवों की व्यवस्था

करता है। दण्ड भी देता है तो दया के साथ कर्मों का फल भोगने व सुधार के हेतु 'विश्वर्यं' देव वरेण्य योग्य गुणों से युक्त व्यक्ति द्वारा ही वह जाना जाता है मन्दमति व दुष्कर्मी से नहीं। अच्छा व्यक्ति वह जिसे और भी अच्छा कहें। इसी भाव से उक्त प्रकरण में 'वृणुते' कहा गया है। वस्तुतः ईश्वर का कोई मित्र, अमित्र अपना पराया नहीं।

प्रतिशंका—यदि 'वृणुते का तात्पर्य आपकी व्याख्यानुसार समझलें तो स्थिति बिलकुल ठीक समझी जा सकती है। परन्तु उपनिषद् वाक्य, पं इन्द्र और पं० प्रियव्रत जी द्वारा उसकी व्याख्या और कुरान का फरमान एक जैसे हैं, अपनों को toelrcate करते हैं तो कुरान को भी tole1ate करें। या साफ कहें कि यह भी माननीय नहीं हैं -उक्त उपनिषद् वाक्य का तात्पर्य मेरी समझ में इसी दृष्टि से उपयुक्त व सार्थक प्रतीत होता है। तथा न्यूनाधिक घूम फिर कर सभी विद्वानों का आशय इसी ओर आता है कि ईश्वर न्यायकारी है। उसमें अपने पराये का अन्तर नहीं है। यह तो हमारी अल्पज्ञता से अन्तर प्रतीत होता है सदाचारी अध्यापक किसी को कम व अधिक नहीं पढाता पर बुद्धि व परिश्रम के आधार पर विद्यार्थियों की योग्यता में अन्तर पड़ जाता है। इसमें अध्यापक के खास व आम करने की बात नहीं आती।

आचार्य लोकेश्वर आर्य
सम्पर्क 9029421718

परिशिष्ठ

पञ्च महायज्ञ विधि

१. (क) पञ्च महाज्ञयों में प्रथम ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत सन्ध्या का विधान लिखा है। कई महानुभावों ने इस को "वैदिक सन्ध्या का नाम देकर छपवाया है"। मेरे मन में शङ्का हुवी कि इस के दूसरे से चौथे तक के तीन मन्त्र वेदों के नहीं हैं। फिर इस को वैदिक सन्ध्या क्यों कहा जाये अतः श्री गङ्गा प्रशाद जी उपाध्याय (जिन की पुस्तक में ऐसा नाम पढ़ा) को लिखा उनका उत्तर इलाहाबाद से दिनाङ्क १-३-६१ इस प्रकार है 'वैदिक सन्ध्या नाम इस लिये दिया है कि पौराणिकों की अन्य पद्धतियां भी हैं। यह सन्ध्या वैदिक ही है क्यों कि प्रायः सभी मंत्र वेदों के ही हैं। इन्द्रीय स्पर्श और मार्जन भी ऋषियों द्वारा वेदों से ही संकलित किये हैं पूरे मन्त्र नही हैं इधर उधर के टुकडे हैं। श्री सातवलेकर जी ने भी यही भाव प्रकट किया है।

नोट श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार (अब समर्पणा नन्द जी) अपनी पुस्तक 'पञ्चयज्ञ प्रकाश' में सन्ध्या के दूसरे मन्त्र के लिये अथर्व काण्ड १६ सू ६०-६१ प्रस्तुतत करते हैं।

ओं वाङ्म आसन्न सो प्राण ए चक्षु रक्षणोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाहोर्बलम्॥
'ऊर्वो रोजो जङ्घयोर्जवः पादयो।ः प्रतिष्टा अरिष्टानि सर्वात्मा
निभृष्टः तनू स्तन्वा मे सहेदतः सर्व मा युर्शीय'।

क्यों न 'पञ्चमहायज्ञ विधि और सन्ध्या छापने वाले इन को बतौर नोट के दूसरे मंत्र के साथ छाप दिया करें इसी

प्रकार तीसरे मंत्र के साथ भद्रम् कर्णेभि शृणुयाम् देवाः भद्रं पश्ये माक्षिभिर्यं जत्रा ··· वाला मन्त्र या कोई और जैसा विद्वान ढूंडे, छपवाया जाया करे।

सार्वदेशिक सभा को इस विषय में निर्देश देना चाहिये।

(ख) श्री पं० विश्वनाथ जी पूर्व वेदोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी का मन्त्र २, ३, ४ के विषय में तथा अन्य शंकाओं के उत्तर निम्न प्रकार हैं।

मन्त्र २, ३, ४ वैदिक भावनाओं के अनुकूल हैं प्रतिकूल नहीं इस दृष्टि से इन्हें भी वैदिक कहा जा सकता है।

शंका २—आचमण का लाभ कफ निवृति बताया गया है। कफ को अन्दर ले जाना स्वास्थ्य को खराब करना है और बाहर फैंकने से स्थान भ्रष्ट होगा अतः आसन पर बैठने से पूर्व आचमण पृथक स्थान पर करें तो कफ वहीं बाहर फैंकी जा सकती है परन्तु अघमर्षण मन्त्रों के पश्चात भी आचमण लिखा है।

उत्तर—कफ की निवृत्ति मुख्य उद्देश्य है इस से संध्या में भी ध्यान लगेगा वरना गला रुका रहने से ध्यान में बाधा पड़ेगी और प्राणायाम भी ठीक प्रकार न हो सकेगा बीच में आचमण करने से गला साफ होता रहता है और ध्यान में बाधा नहीं पड़ती। आवश्यकता न महसूस हो तो आचमण चाहे न करे।

मेरा नोट—कफ के लिये रुमाल का प्रयोग कर पीछे धोलें।

(३) तीसरा मन्त्र मार्जन का है। कपड़ों पर पानी के छींटे लगाना ठीक प्रतीत नहीं होता।

उत्तर—मार्जन मन्त्र में शिरसि, नेत्रयोः, कण्ठे, पादयोः, पुनः शिरसि यह स्थान तो नगे रहते हैं और रह सकते हैं। शेष पवित्रता की मानसिक भावनाएं कर लेनी चाहिये।

(४) चौथा मन्त्र प्राणायाम का तैतिरीय उपनिषद् प्रपाठक १० अनुवाक ७१ अनुसार व्याहृतियों का समूह है। जहां तक मुझे याद है पातञ्जल योग शास्त्र में इनको प्राणायाम विधि में नहीं रखा गया। ओम से प्राणायाम करने में ओ से वायु को ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाना होता है और म से वायु को नीचे उतार बाहर निकालना होता है व्याहृतियों में केवल 'भूः' से ही वायु ऊपर जायेगी शेष व्याहृतियों की स्वर निचली ओर जाती है इस मन्त्र के स्थान में 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम' वाले मन्त्र का चिन्तन अधिक उपयोगी होगा।

उत्तर—प्राणायाम मन्त्र में 'भूः' आदि का पाठ शरीर के उस उस अङ्ग का भी स्मरण कराता है जिस जिस अङ्ग के साथ भूः आदि का सम्बन्ध है इस मन्त्र के द्वारा प्राणायाम करने का अभिप्राय यह है कि समग्र मन्त्र के बोलने तक एक श्वास या एक निश्वास या एक बाह्य कुम्भक या एक भीतरी कुम्भक हो साथ ही वह भावना भी जागृत हो कि मेरे सिर नेत्र आदि पवित्र हो जायें।

हां योग दर्शन में इस मन्त्र का विधान नहीं। योग का प्राणायाम चित वृत्ति के निरोध के लिये है सिर नेत्रादि में चित वृत्तियों के घुमाने के लिये नहीं। शेष शंका केवल कल्पना मात्र है।

मेरा नोट-शन्नो देवी मन्त्र से पहिले भी प्राणायाम करने

लिखे हैं वह योग शास्त्रानुसार ओम से करने हैं सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास में ऐसा ही लिखा है। सिर नेत्रादि में पवित्रता की भावानाएं तीसरे मन्त्र में आ चुकी हैं इस दृष्टि से चौथा मन्त्र (superfluous) अकारथ ठहरता है। पर पण्डित जी ने लिखा है कि अब यह संध्या चल पड़ी है अब इसमें परिवर्तन करना अभीष्ट न होगा।

(५) अघमर्षण के तीन मंत्र है। (क, पहिले में 'रात्रि' शब्द आया है दूसरे में 'अहोरात्राणि' तीसरे सूर्या चन्द्रमसौ' आये हैं पहिले मंत्र की 'रात्रि' का क्या प्रयोजन है अहोरात्राणि' की 'रात्रि' से इसकी क्या विशेषता है? (ख) अहोरात्राणि पहिले और सूर्या चन्द्रमसौ पीछे आने से श्री नारायण स्वामी जी अपनी सन्ध्या पुस्तक में लिखते हैं कि सूर्य चन्द्र को पहिले बना चुका था ऐसा अर्थ समझो वरना आक्षेप आता है कि सूर्य से पहिले दिन रात कैसे बने। मुझे भी यह आक्षेप है परन्तु इस समाधान से मेरी सन्तुष्टि नहीं क्यों कि अकल्पयत Past Indefinite tense में हैं Past Perfect में नहीं इन tenses के हिन्दी नाम याद नहीं।

उत्तर—पहिले मन्त्र में रात्रि महा रात्रि=महा प्रलय की रात्रि 'अहोरात्राणि' के साथ 'विदधत' शब्द का प्रयोग है इसका अर्थ बनाता हुवा' 'विधान करता हुआ' न कि 'बनाये' या रचे। इस प्रकार स्पष्ट शब्दों में यह भाव होगा कि 'रातदिन' का निर्माण करने के लिये प्रभु ने सूय और चन्द्रमा रचे अकल्पयत् में past tense है और विदधत् Present continuous

नोट — श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार ने स्वर्ग नामी एक

पुस्तक लिखी हुई है उसमें उन्होंने इस मन्त्र के आखिरी चार शब्द दिवम पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वः को लेकर गृहस्थ पर घटाया है। मैंने उनको लिखा कि अकल्पयत् किया के यह चार कर्म (द्वितीया) तो आपने ले लिये परन्तु सूर्य चन्द्र जो इसी अकल्पयत के कर्म हैं छोड़ दिये। इन छःयों को लेकर कुछ बताओ। वरना चार की संगति लगाना ठीक नहीं। उन्होंने कोई उत्तर देने की कृपा नहीं की।

(६) मनसा परिक्रमा मन्त्रों के तीन भाग हैं। पहिले भागों को इस सन्ध्या विषय के अन्त में 'विशेष बातें' शीर्षक में लिया गया है वहां देखने की कृपा करें। तीसरे भाग में आक्षेप (क) वो जम्भे दध्म' यह भाषा बड़ी क्रूर (barbaric) प्रतीत होती है गवार स्त्रियां जब लड़ती हैं तो कहती हैं 'तेरे बच्चों को कच्चा खाजाऊं' भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन को अपने जबड़ों में कौरवों को मरा हुवा दिखाया। संसार में मरदुन खोर जातियां भी सुनी जाती हैं। मुझे इन सबका जड़ वेद की यह कठोर भाषा ही प्रतीत होती है।

उत्तर—परमात्मा निः शरीर है। प्राकृतिक शक्तियां भी निः शरीर हैं अतः उस की प्राकृतिक दाढें तो हो नहीं सकती। अतः 'जम्भे' शब्द लाक्षणिक है। परमात्मा के और प्रकृति के नियम अटल हैं अतः कठोर हैं। इन नियमों पर न चलने वाला ऐसा पिस जाता है जैसे कि मांसाहारी जानवर की दाढों में आया हुवा शिकार, या मनुष्य की दाढों में आया हुवा भोजन। नियमों की इस अटलता या कठोरता को दर्शाने के लिये 'जम्भे' शब्द का प्रयोग किया गया है ताकि व्यक्ति परमात्मा के नियमों का कठोरता तथा लगन से पालन करे। नियम कठोर होने ही चाहियें नियमों की कठोरता में कोई बुराई प्रतीत नहीं होती।

आक्षेप (ख) 'तम्' उस पुरुष को जो हम से द्वेष करता है या जिस से हम द्वेष करते हैं, तेरे जबड़ों में देते है। गोया दोनों तरफों से विपक्षी को ही रगड़ा है जब कि द्वेष का शब्द दोनों के लिये एक जैसा है यह भाव न्याय युक्त नहीं।

उत्तर—'तम्' एक वचन में है 'अस्मान्' बहुवचन में है। अगर एक व्यक्ति संगठित समाज या राष्ट्र का दोषी हो तो संगठित समाज या राष्ट्र ही फैसला करे कि अमुक व्यक्ति, समाज या राष्ट्र का द्वेषी है या नहीं अगर वह ऐसा है तो समाज या राष्ट्र का सामूहिक भावना का उसे शिकार बनना ही चाहिये। इस में आपत्ति प्रतीत होनी न चाहिये।

(७) उपस्थान मन्त्र में 'उद्वयम्' में देवम् देवत्रा और सब से आखीर के मंत्र में नमः शिवाय च शिवतराय च, यह comparative degrees क्यों आई हैं किसके साथ मुकाबिला है।

उत्तर—उद्=श्रेष्ट प्रकृति=तमस, उद्+तर प्रकृति और जीव में से जीव श्रेष्ट तर=स्वः, उ+तम=परमात्मा प्रकृति, जीव और परमात्मा में से परमात्मा सर्वोत्तम है। सूर्य, ज्योतिः देवं देवत्रा। तर Comparative तथा तम Superlative degree हैं।

नमस्कार मन्त्र में शिवायच=कल्याणकारी शिवतराय च=माता, पिता आचार्य प्रकृति आदि भी कल्याणकारी है अतः शिव हैं। परमात्मा इन से बढ़ कर कल्याणकारी है अतः शिवतर है। परमात्मा से भिन्न सब पदार्थ शिव हो सकते हैं परन्तु परमात्मा शिव तो है ही अपितु सब शिवों से बढ़ कर शिवतर है

(८) आखीर के मन्त्र में प्रत्येक शब्द के अर्थ कल्याणकारी

भाव के ही हैं एक ही शब्द से नमस्कार क्या काफी न थी ?

उत्तर—शम् = दुःखों की शान्तिः = Positive सुख केवल दुःख निवृत्ति रूप ही नहीं भवाय च कराय च में भवाय शब्द से प्रभु की सत्ता मात्र को दर्शाया है और कराय शब्द द्वारा प्रभु को सचेष्टता से प्रेरक दर्शाया है इस प्रकार 'कराय' और भवाय' में आर्थिक भेद है 'कराय' शब्द में प्ररणा का आधिक्य प्रतीत होता है।

(९) गायत्री मन्त्र कहा जाता है तीन वेदों में आया है परन्तु अर्थ एक जैसे ही किये जाते हैं। व्याहृतियां सब के साथ नहीं (सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास में यजु ३६/३ का हवाला देकर व्याहृतियों को तैत्तिरीय आरण्यक [प्र पा. ७ अनु ५] के वचन बताया है। व्याहृतियों के लगाने और न लगाने में क्या रहस्य है ?
उत्तर - मेरे पास मन्त्रानुक्रमणिका नहीं इस लिये इस प्रश्न का उत्तर केवल स्मृति के आधार पर देना ठीक नहीं। जहां तक मुझे स्मरण है किसी भी वेद में गायत्री के अंश रूप में 'ओं भूः भुवः स्वः का लेख नहीं हुवा (पण्डित जी का स्मरण भी ठीक है। अब यह verify कर लिया है। म. स) गायत्री मन्त्र के अर्थ भी प्रकरणानुसार ही करने चाहिये। ओं भूः भुवः स्वः इन शब्दों के पूर्व आने से गायत्री का वह अध्यात्मिक अर्थ करना होगा जिसका कि ओ३म् आदि के साथ समन्वय हो सके।

(१०) समर्पण में 'धर्मार्थ काम मोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन नः संध्या से इतना फल मांगना disproportionate है। मोक्ष के लिये सत्यार्थ प्रकाश में बड़े कठिन साधन लिखे हैं।

उत्तर—यह समर्पण ही पूर्णरूपेण समर्पण कर देने से 'सद्यः सिद्धि' अवश्य होती है योग में भी ऐसा विचार आया है देखो

'तज्जपः तदर्थं भावनम्' व्यास-भाष्य।

नोट—मैं पं० जी का इस कष्ट के लिये बड़ा आभारी हूं। मस.

(११) संध्या के सम्बन्ध में विशेष बातें

(क) श्री सातव लेकर जी ने 'संध्या-उपासना छोटी पुस्तक में प्राणायाम के सम्बन्ध में तीन मन्त्र दिये हैं।

(१) (पूरक:) यही व्याहृतियों वाला मन्त्र जो स्वामी जी ने लिखा है। (२) (कुम्भक:) गायत्री मन्त्र (३) (रेचक) ओं आपो ज्योतिरसोऽमृत ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्। मेरे लिये यह नई बात है जो साधक आजमना चाहें आजमाएं॥

(ख) मनसा परि क्रमा मन्त्रों के देवता अथर्व वेद में इस प्रकार लिखे है। (१) प्राची अग्नि:, असिता, आदित्या: (२) दक्षिण इन्द्र तरश्चिराजि पितर:।

(३) प्रतीची; वरुण: पृदाकु: अन्नम्।
(४) उदीची, सोम: स्वज: अशिन:।
(५) ध्रुवा, विष्णु, कल्माषग्रीव: वीरुध:।
(६) ऊर्ध्वा बृहस्पति:, श्वित्र: वर्षम्।

सत्यार्थ प्रकाश में वेद विषय पर लिखते हुये स्वामी जी कहते हैं कि देवता मन्त्र के विषय को पकट करता है। (मन्त्र विषय को खोला करता है) मेरा निवेदन है कि इनने विषयों को इन मन्त्रों में खोला नहीं गया केवल इन शब्दों का मन्त्रो में आन मात्र ही पर्याप्त नहीं है। सार्वदेशिक सभा के व्यानार्थ-तथ

समाधान प्रस्तुत करने के प्रयत्न हैं-

(ख) २ मनसा परिक्रमा मन्त्रों के प्रथम भागों के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि 'रक्षता' शब्द के अर्थ को दूसरे तीसरे, पांचवे और छटे मन्त्र में जिस दुःख से हमारी रक्षा करता है उसके साथ जोड़ा है परन्तु पहिले और चौथे में 'असितः' और वजो' के अर्थ पञ्चमी विभक्ति में न कर प्रथमा से बन्धन रहित और अजन्मा किये हैं और 'रक्षता' के अपने तौर पर ही रक्षा करने वाला किये हैं मन्त्रो की रचना एक जैसी प्रतीत होती है अतः सब में पञ्चमी विभक्ति लगनी चाहिये। फिर पांचवें मन्त्र के 'कल्माषग्रीवा' के अर्थ स्पष्ट नहीं लिखे और उनका 'वीरुध' से सम्बन्ध कैसे जुड़ता है। यदि आध्यात्मिक आदि भौतिक आदि दैविक तीन प्रकार के दुःखों से रक्षा का विचार करें तो आदि दैविक दुःखों के प्रकट करने वाले कोई शब्द नहीं शेष दो के लिये तो है सपादि भौतिक शवित्रः अध्यात्मिक के द्योतक हैं।

मैं ने कई संध्यायें पढी हैं किसी से भी इन प्रश्नों के बारे में तुष्ठ नहीं हुई। सब लेखकों ने अपनी बुद्धि अनुसार सर्व श्रेष्ठ अर्थ करने का प्रयत्न किया है। पं० मुक्तिराम जी (पीछे (स्वा०) आत्मा नन्द जी) ने इसका हेतु भी दिया है वह कहते हैं कि महर्षि ने संस्कृत में केवल पहिले मन्त्र का पूरा अर्थ किया है शेष पांच के प्रथम भाग का भी पूरा अर्थ नहीं किया 'शेष पूर्ववत' लिख दिया।

पण्डितों के हिन्दी में दिये अर्थों को वह प्रमाणिक नहीं मानते यह बात युक्ति युक्त होने से विद्वानों के भिन्न भिन्न अर्थों पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। पं. सातव लेकर जैसा महा

विद्वान भी अपनी (बड़ी) संध्योपासना पुस्तक के पृष्ठ २ पर लिखता है 'मनसा परिक्रमा के मन्त्र बहुत प्रयत्न करने पर भी जैसे खुलने चाहिये नहीं खुले अतः यह आवश्यक हो जाता है कि सार्वदेशिक सभा इस प्रकार की विभिन्नता को दूर कर अपनी ओर से एक ऐसी संध्या छापे जो सब के लिये प्रमाणिक हो और साधकों की बेचैनी दूर हो।

(ग) इस लेख के नौवें पैरे में, पं० विश्वनाथ जी की सम्मति लिखी गई है कि गायत्री मन्त्र के अर्थ भी प्रकरणानुसार होने चाहिये परन्तु श्री स्वामी जी ने इस के लिये यजु ३६'३/४०/१७ ऋ ३'६२'१० के हवाले दिये और 'एवंत्रिषु वेदेषु समानो मन्त्रः' लिख कर भी एक ही अर्थ दिये हैं। इस बात की ओर भी सार्वदेशिक सभा का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

(घ) इसी प्रकार आचमन मन्त्र 'शन्नो देवीर भिष्टये-' यजु ३६।१२ और अथर्व १'६'१ के हैं परन्तु अर्थ एक हो चल रहे हैं।

(ङ) आर्य समाज के प्लैट फार्म से कहा जाता है कि ऋक साधारण ज्ञान, यजु-कर्म, साम-उपासना तथा अथर्व-विज्ञान की शिक्षा देते हैं। संध्या प्रार्थना उपासना विषयक बात है परन्तु इसमें साम के मन्त्र नहीं पहिला यजुः पांचवे ऋग, छटे से ग्यारह तक अथर्व।

उपस्थान १४ से १५ तथा शत्तरवां यजु गायत्री ऊपर लिखा कम से कम उपस्थान के मन्त्र तो साम के हों।

(च) अघमर्षण के पश्चात गायत्री मन्त्र का विचार भी लिखा है यदि यह कहा जाय कि पाप से बचने वाले मन्त्रों के साथ

समाधान प्रस्तुत करने के प्रयत्न हैं-

(ख) २ मनसा परिक्रमा मन्त्रों के प्रथम भागों के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि 'रक्षिता' शब्द के अर्थ को दूसरे तीसरे, पांचवे और छटे मन्त्र में जिस दुःख से हमारी रक्षा करता है उसके साथ जोड़ा है परन्तु पहिले और चौथे में 'असितः' और 'अजो' के अर्थ पञ्चमी विभक्ति में न कर प्रथमा से बन्धन रहित और अजन्मा किये हैं और 'रक्षिता' के अपने तौर पर ही रक्षा करने वाला किये हैं मन्त्रो की रचना एक जैसी प्रतीत होती है अतः सब में पञ्चमी विभक्ति लगनी चाहिये। फिर पांचवें मन्त्र के 'कल्माषग्रीवा' के अर्थ स्पष्ट नहीं लिखे और उनका 'वीरुध' से सम्बन्ध कैसे जुड़ता है। यदि आध्यात्मिक आदि भौतिक आदि दैविक तीन प्रकार के दुःखों से रक्षा का विचार करें तो आदि दैविक दुःखों के प्रकट करने वाले कोई शब्द नहीं शेष दो के लिये तो है सपादि भौतिक शवित्रः अध्यात्मिक के द्योतक हैं।

मैं ने कई संध्यायें पढ़ी हैं किसी से भी इन प्रश्नों के बारे में तुष्टि नहीं हुई। सब लेखकों ने अपनी बुद्धि अनुसार सर्व श्रेष्ठ अर्थ करने का प्रयत्न किया है। पं० मुक्तिराम जी (पीछे (स्वा०) आत्म नन्द जी) ने इसका हेतु भी दिया है वह कहते हैं कि महर्षि ने संस्कृत में केवल पहिले मन्त्र का पूरा अर्थ किया है शेष पांच के प्रथम भाग का भी पूरा अर्थ नहीं किया 'शेष पूर्ववत' लिख दिया।

पण्डितों के हिन्दी में दिये अर्थों को वह प्रमाणिक नहीं मानते वह बात युक्ति युक्त होने से विद्वानों के भिन्न भिन्न अर्थों पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। पं. सातव लेकर जैसा महा

विद्वान भी अपनी (बड़ी) संध्योपासना पुस्तक के पृष्ठ २ पर लिखता है 'मनसा परिक्रमा के मन्त्र बहुत प्रयत्न करने पर भी जैसे खुलने चाहिये नहीं खुले अतः यह आवश्यक हो जाता है कि सार्वदेशिक सभा इस प्रकार की विभिन्नता को दूर कर अपनी ओर से एक ऐसी संध्या छापे जो सब के लिये प्रमाणिक हो और साधकों की बेचैनी दूर हो।

(ग) इस लेख के नौवें पेरे में, पं० विश्वनाथ जी की सम्मिति लिखी गई है कि गायत्री मन्त्र के अर्थ भी प्रकरणानुसार होने चाहिये परन्तु श्री स्वामी जी ने इस के लिये यजु ३६'३/४०/१७ ऋ ३'६२'१० के हवाले दिये और 'सर्वत्रिषु वेदेषु समानो मन्त्रः' लिख कर भी एक ही अर्थ दिये हैं। इस बात की ओर भी सार्वदेशिक सभा का ध्यान आकर्शित किया जाता है।

(घ) इसी प्रकार आचमण मन्त्र 'शन्नो देवीर भिष्टये-' यजु ३६।१२ और अथर्व १'६'१ के हैं परन्तु अर्थ एक हो चल रहे हैं।

(ङ) आर्य समाज के प्लैट फार्म से कहा जाता है कि ऋक साधारण ज्ञान, यजु-कर्म, साम-उपासना तथा अथर्व-विज्ञान की शिक्षा देते है। संध्या प्रार्थना उपासना विषयक बात है परन्तु इसमें साम के मन्त्र नहीं पहिला यजुः पांचवे ऋग, छटे से ग्यारह तक अथर्व।

उपस्थान १४ से १५ तथा शत्तरवां यजु गायत्री ऊपर लिखा कम से कम उपस्थान के मन्त्र तो साम के हों।

(च) अघमर्षण के पश्चात गायत्री मन्त्र का विचार भी लिखा है यदि यह कहा जाय कि पाप से बचने वाले मन्त्रों के साथ

इसको जोड़ना युक्ति युक्त प्रतीत होता है तो नमस्कार से पहिले जो इसको स्थान दिया है वहां से उड़ा दे।

परन्तु इसके विरुद्ध यह विचार आता है कि गायत्री मन्त्र के तीन वेदों में आने की बात सार्थिक बनाने के लिये संध्या में भी इसके तीन स्थानों पर आने से हम भी अपने मन में तीन प्रकार की भावनाएं पैदा करें:—(१) शिखा बान्धने की क्रिया को यजु की आज्ञा पूर्ति (२) अघमर्षेण के मन्त्र ऋक् के हैं उनके साथ इसका विचार यूं करे कि प्रभु ने इस सृष्टि की रचना कैसी बुद्धि पूर्वक की है तो यह ऋक साधारण ज्ञान की पूर्ति हो गई फिर उपस्थान मन्त्रों के साथ ही गुरु मन्त्र का आना अथवा विशेष ज्ञान की पूर्त के लिये मेधा और ऋतम्भरा बुद्धि तक की प्रार्थना और उनकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न शील होने की भावना पैदा करें।

—:पितृ यज्ञ:—

मेरे पास पञ्च महायज्ञ विधि वैदिक यन्त्रालय अजमेर सं० २००८ की छपी हुई उसके पृष्ठ ३४ से लेकर ४२ तक पितृयज्ञ (श्राद्ध तर्पण) का वर्णन है। इसके पृष्ठ ३४ पर पितृ यज्ञ में देव, ऋषि और पितर गिनाये हैं। पितर से मैं अपने जीवत माता पिता, पितामहादि जैसा कि पृष्ट ३८ पर लिखा है समझता हूँ। क्योंकि विद्वानो के लिये देव शब्द अलग पड़ा है। और अतिथि यज्ञ यज्ञ में भी उस भाव की पूर्ति हो जाती है।

मेरी प्रबल शंका है कि संस्कार विधि तथा सत्यार्थ प्रकाश में वानप्रस्थ का जो चित्र खींचा है उसका ध्यान रखते हुवे।

अपने माता पिता का दैनिक श्राद्धतर्पण नहीं हो सकता।

२—विचार शील पुरुषों से मेरा निवेदन है कि वह सोचें कि पृ० ३८ पर दिये यजु २।३४ में आये 'मैं पितृन' शब्दों को सार्थक बनाने के लिये क्या यह ठीक न होगा कि वानप्रस्थ के अर्थ ऐसी अवस्था को माना जावे जिस में अपने घर में या घर से बाहर ग्राम के निकट ही कुटिया या समाज मन्दिर में इस प्रकार से रहें कि अपने घरेलू कार्यों में लिप्त न होकर परोपकार (लोक-हित) कार्यों में लगे रहें।

और समाज की शक्ति बढ़ावें। हमारा प्रचार और तदनुसार कर्म एक ही दिशा में होने चाहियें। आज कल कहीं पूर्व काल की तरह ऐसे बन नहीं हैं जिनमें सत्यार्थ प्रकाश और संस्कार विधि अनुसार निवास हो सके। जहां कहीं बनाप्रस्थ की स्थापना की गई है वहां गृहस्थियों के से ही निवास स्थान और अन्न खान पान आदि की भी वही सुभिधाएं हैं, इससे वानप्रस्थ की विशेषता उड़ जाती है।

३ ऐसी अवस्था में सार्वदेशिक आर्य प्रति निधि सभा का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह पुराने उद्देश्य और आज कल की परिस्थितियों को दृष्टि गोचर रखते हुवे वानप्रस्थ और सन्यास का नया विधान बनावे। आज कल, आपाधापी है।

गृहस्थ में उपयोगी समझ कर यज्ञों में ६ आसन स्थान

पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार की पञ्चयज्ञ प्रकाश पुस्तक से उद्धृत। किये जाते हैं।

१—पूर्वाभि मुख यजमान।

२—होता (यज्ञ का प्रोग्राम सुनाते रहना)

३—दाहिनी ओर-यजमान पत्नी।

४—ब्रह्मा (चुप रहना-कहीं त्रुटि हो जावे उसे ठीक कराना)

५—यजमान के सामने—उद्गाता (वेदमन्त्रों का गान करना)

६—बाईं ओर अध्वर्यु (होता क अनुसार कार्य कराना)

परिशिष्ट सं २

सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास में गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था की पु`ष्ट में अज्ञात कुल जाबाल ऋषि के छन्दोग्य उपनिषद अनुसार ब्राह्मण हो जाने का उदाहरण दिया गया है। इसकी पृष्ट भूमि मुझे अपवित्र प्रतीत हुवी शंका होते हुवे भी मैं ने उसका उल्लेख अनुचित समझा परन्तु जब २७.६.६४ के हिंगनवे आर्य समाज के साप्ताहिक सत्सङ्ग में सभाद्वा भेजे गये एक उपदेशक ने सत्य की पुष्टि में इसकी विस्तार पूर्वक कथा सुना दी तो मैं इस का विरोध उचित समझ कर यह नोट लिख रहा हूँ। कोई सज्जन कह सकते हैं कि मुझे इस सम्बन्ध में सभा को लिख देना चाहिये था इस पर मेरा नम्र निवेदिन है कि पंजाब प्रान्तीय सभा ने बहुत पत्र व्यवहार और भेटों के फल स्वरूप में यही सुझाव दिया कि मैं सार्वदेशिक को लिखूं स्वर्गीय पं० इन्द्र जी ने जो उस समय सार्वदेशिक सभा के प्रधान थे मुझे जबानी बताया कि जिस बात को हम Cold storage देना चाहते हैं उसको हम धर्मार्य सभा में रख देते हैं आपका पत्र भी वहां भेज दिया है करीबन दश वर्ष बीत गये हैं अभी तक 'वर्णाश्रम धर्म पर कुछ विचार' वाला मेरा लेख अन्तिम निश्चय नहीं पा सका।

२—अब सिद्धान्त रूप में इस कथा की पृष्ट भूमि पर दो चार बातें कहना चाहता हूं।

(अ) बच्चे सत्यकाम ने अपनी माता के कथनानुसार गुरु जी को कह दिया कि मेरे पिता का गोत्र आदि कुछ पता नहीं इस सत्य पर उसके पिता को ब्राह्मण समझा गया। बच्चे तो सरल हृदय होते हैं। कहते हैं श्री लाजपतराय जी किसी सज्जन से कालज के लिये दान मांगने गये। उसने अन्दर से ही आवाज पहचान कर बच्चे को आदेश दिया कि जाओ कह दो कि पिता जी घर में नहीं हैं। उसने बाहर आन कर ऐसे ही कह दिया 'पिता जी कहते हैं वह घर में नहीं हैं।' परख का यह तरीका ही ठीक प्रतीत नहीं होता।

(ख) स्वामी जी ने इसी समुल्लास में लिखा है कि वर्ण का निश्चय समावर्तन संस्कार पर आचार्य द्वारा होता है उसमें जन्म को कोई महत्व नहीं जन्म का शूद्र ब्राह्मण बन सकता है और ब्राह्मण शूद्र बन सकता है।

(ग) बिना आपिस में दूसरे को जाने कथा की पृष्ट भूमि यह है कि जगल में किसी स्त्रि-पुरुष के समागम से यह बालक उत्पन्न हो जाता है। मेरे विचार में अनाचार और कामातुरता की यह पराकाष्टा है यह तो पुराणों की अशलील कथाओं से (जिन पर हम आक्षेप करते नहीं थकते) भी अतिनिकृष्ट है ऐसों को ब्राह्मण मानना बड़ी भारी भूल है।

(घ) अन्य मताव लम्बी कहेंगे कि बस यही तुम्हारे आरण्य वास का नमूना है तो लज्जा के मारे सिर नीचा करना पड़ेगा। स० स० २८ ६-६४।

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

परिशिष्ट ३

सत्यार्थ प्रकाश के अंत में श्री स्वामी जी ने 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' लिखा है इसमें ५१ पदार्थों का वर्णन है। परन्तु इनके साथ इन जैसी और बातों को मिला कर एक लघु पुस्तक 'आर्योद्देश्य रत्नमाला' लिखी है उसमें ऐसी १०० बातों का उल्लेख है अतः मैं ने उस पर जो शङ्काएं उठाई और जो उत्तर श्री विश्वनाथ जी (भूतपूर्व वेदाचार्य गुरुकुल कांगड़ी) ने दिये उनको आर्य जनता के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जाता है' आचार्य जी की इस कृपा का धन्यवाद है।

शंका—१ धारा १० परलोक और धारा १४ स्वर्ग, इसी प्रकार धारा ११ अपरलोक और धारा १५ नरक में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता जिससे उनकी पृथक पृथक सत्ता समझ में आ सके, अतः इनमें से एक एक निरार्थक है। धारा २६' मुक्ति परलोक में भी आई है। दोनों में परमेश्वर की प्राप्ति आवश्यक है। परलोक में पुनर्जन्म भी माना है। मुक्ति में नहीं। स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। मेरा विचार यह भी है कि परलोक के मुकाबिले में 'इहलोक' लाना चाहिये था न कि 'अपरलोक'।

उत्तर—परलोक, अपरलोक, स्वर्ग, नरक यह शब्द प्राचीन काल से चले आये हैं। पौराणिकों ने इन्हें अलग अलग लोक माने हैं। ऋषि ने उनका खण्डन अपने ग्रन्थों में किया है। और यह दर्शाया है कि यह पृथ्वी ही परलोक अपरलोक, स्वर्ग और नरक है। सुख दुःख शान्ति अशान्ति आदि की अवस्था विशेषों का ही नाम परलोक आदि है। यह कोई भिन्न २ स्थानों के अलग अलग २ लोकलोकान्तर नहीं हैं यही ऋषि का अभि-

प्राय है। अपने २ कर्मों की दृष्टि से इसी भूमण्डल पर कोई परलोक में है कोई अपरलोक में, कोई स्वर्ग में है कोई नरक में चूंकि प्राचीन साहित्य में इन शब्दों का व्यवहार रहा है इस लिये शब्दों की व्याख्या ऋषि ने मुक्ति में न जन्म मरण है, न दुःख है अपितु परमात्मा में रमण मात्र है। परन्तु परलोक शारीरिक जीवन की वह अवस्था है जिसमें अभी मुक्ति प्राप्त नहीं हुवी परन्तु मुक्ति व पुनर्जन्म आदि के साधन जुटाने हैं परलोक का corelative शब्द अपरलोक ही है। ऋषि की व्याख्या में परलोक, अपरलोक, नरक, स्वर्ग-यह सब 'इसलोक' में आते हैं।

शंका—२ धारा १८ सत्यपुरुष-इसकी व्याख्या में 'महाशय' शब्द से क्या तात्पर्य है इसमें कौनसा गुण है जो पूर्व वर्णित धर्मात्मा आदि शब्दों में नहीं आता।

उत्तर—महाशय का अर्थ है बड़े आशयों वाला जिसके वाक्यों में गूढ़ आशय हों। महात्मा का अर्थ है बड़ी ऊंची आत्मा वाला।

शंका—३ धारा ३० मुक्ति के साधन-सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास में जो साधन कहे हैं उनमें से एक वैराग्य है जो यहां दूसरा साधन माना है उसके अनुसार पृथवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव जानकर उसकी आज्ञा पालन में तत्पर रहना। इतने बड़े भारी ज्ञान से इस धारा में छूट कोई छोटी बात नहीं।

उत्तर—धारा ३० में मुक्ति के साधनों में आदि शब्द पड़ा है इस द्वारा वैराग्य आदि अन्य साधनों का भी संग्रह समझना चाहिये।

शंका—४ धारा ४० से ४२ आर्य, आर्यावर्त, दस्यू अनार्य। इन शब्दों की निवासस्थान दृष्टि कोण से जो व्याख्या की गई है वह अन्य देशवासियों तथा इसी देश के दक्षिण वासियों के लिये चिढ़ाने वाली है क्यों कि कोई भी दस्यु या अनार्य कहलाना पसन्द नहीं करेगा जब कि इनके वाचक अर्थ चोर डाकू और दुष्ट मनुष्य दिये गये हैं यह Terminology अंग्रेज के समय की मुसलिम गैर मुसलिम की तरह भेद भाव को बढाने वाली हैं। इन शब्दों का इस Sense में प्रयोग का वहिष्कार होना चाहिये और सारे हिन्दुस्तान को भारत और इसके वासियों को भारतीय कहे जाने का प्रयत्न आर्य समाज को करना चाहिये।

उत्तर—आर्य दस्यु और आर्यावर्तः—

आर्य और दस्यु ये शब्द वेदों में भी आते हैं। आर्य और दस्यु का वर्णन गुण, कर्म, स्वभाव से होता है चाहे ये कहीं भी रहें। साथ ही देश की दृष्टि से भी मनुस्मृति में इनका लक्षण किया गया है मनुस्मृति ने ही धारा ४१ की हदें निश्चित की हैं। मनुस्मृति के समय आम लोग इन्हीं हदों में रहते थे और इन हदों से बाहर के लोग प्रायः असभ्य और जाहिल लोग थे। इस लिये मनुस्मृति के प्राचीन काल की यह परिभाषा उस समय की दृष्टि से ठीक है। आज कल तो आर्यावर्त शब्द का इन हदों के लिये प्रयोग ही नहीं होता भारत शब्द आर्यावर्त शब्द से बहुत व्यापक है। भारत में सभी भारतीय आ जाते हैं आर्यावर्त के मनुस्मृति काल के लक्षण से आर्यावर्त भारत का केवल एक ही हिस्सा है। इस प्रकार निवास स्थान की दृष्टि से जो आर्य का लक्षण किया गया है वह मनुस्मृति का है। और मनुस्मृति के काल का ही समझना चाहिये। वर्तमान

समय में यह लागू नहीं होता आर्यावर्त के इस लक्षण की केवल Historic value है। ऋषि ने आर्यावर्त के लक्षण में 'और जहां तक इसका विस्तार है' ये शब्द भी लिखे हैं इसके अनुसार सिन्धु के विस्तार से पश्चिमी समुद्र और ब्रह्मपुत्र नदी के विस्तार से बङ्गाल समुद्र तक और विन्ध्य के विस्तार से दक्षिण के पूर्वी और पश्चिमी घाट यदि ले लें तो समस्त भारत इस लक्षण में आ जाता है।

शंका—५ धारा ६० विद्या पुस्तक चार वेदों को माना वेदों के अतिरिक्त अपनी पुस्तकें ब्राह्मण, उपनिषद्, दर्शनादि तथा अन्य भाषाओं की पुस्तकें भी तो विद्या से भरी पड़ी हैं यह उनके साथ अन्याय है, हां अगर वेदों को आदि विद्या पुस्तक लिखते तो बात ठीक बन जाती।

उत्तर—५ स्वामी जी ने वेद और विद्या पुस्तक इनको पर्यायवाची माना है 'विद्या' का अभिप्राय स्वामी जी ने सत्य विद्या लिया है जो कभी असत्य हो नहीं सकती। मनुष्य लिखित पुस्तकों में मनुष्य अपने अनुभवों और ज्ञानों के आधार पर लिखते हैं जो कि असत्य भी हो सकते हैं। वेद के अतिरिक्त पुस्तकों को ज्ञान पुस्तक कहना ऋषि को अभिप्रेत था विद्या पुस्तक नहीं।

शंका—६ धारा ६२ गुरु-इस परिभाषा में यहां पिता और आचार्य का ग्रहण किया है परन्तु सत्यार्थप्रकाश में माता को भी (बल्कि सब से पहिला) गुरु माना है। यह स्वामी जी की भूल समझी जावे या कि कोई विशेष कारण ढूंढा जा सकता है।

उत्तर—माता भी गुरु है इसमें कोई शक नहीं है। माता का समावेश भी होना चाहिये था।

शंका—७ धारा ६३ अभाव इसकी व्याख्या समझ में नहीं आई इस उदाहरण से कोई नया ज्ञान नहीं मिलता क्योंकि जल का ज्ञान भी पहिले था और 'वहां जल न होने से जहां जल हो वहां से ले आना चाहिये यह ज्ञान भी पूर्व शिक्षा का परिणाम है।

उत्तर—अभाव निमित्त से वस्तु के अभाव का ही ज्ञान हो सकता है। जैसे रात को सोए हुए खड़का हुआ। सोया हुआ शक करने लगा कि कहीं कोई चोर न हो। उठा और सब ओर देखा कि कोई चोर नहीं है, चोर के अभाव, होने से चोर के अभाव का ज्ञान हुआ और वह निश्चिन्त होकर फिर सो गया इस प्रकार अभाव निमित्त से अभाव का ही ज्ञान हो सकता है। परन्तु जल लाने का जब आदेश मिला और घड़े में जल का अभाव पाया तो उसे एक तो यह ज्ञान हुआकि घड़े में जल नहीं है। परन्तु जल लाना जरूरी है। इस लिये उसने जल की ढूंढ की उसे जल मिल गया। इससे उसको नया ज्ञान हुआ कि अमुक स्थान में जल मिल सकता है। यह एक दूसरा ज्ञान है जो कि घड़े में जल के अभाव के कारण जल ढूंढने पर हुआ यदि घड़े में उसे जल मिल जाता तो उसे नये स्थान में ढूंढने की आवश्यकता न पड़ती और न उसे इस नये जल का ज्ञान होता।

प्रभु कृपा से यह शिव सङ्कल्प पूर्ण हुआ। कोटि कोटि धन्यवाद। प्र० स०

मेहरसिंह धमतोश २६-६-६३

१०० सी. तीमारपुर दिल्ली ६

परिशिष्ट ४

मांस खाने वाले आर्य भाई महात्मा पार्टी को यह कहा करते थे कि वृक्षों और वनस्पतियों में भी तो जीव है उनको काटने और खाने में भी वैसे ही पाप लगता है जैसे पशुओं को मार कर खाने में। महात्माओं का उत्तर होता था कि उनमें जीव सुषुप्ति अवस्था में होता है इस लिये उन्हें कोई दुःख दर्द न होने से हमें हिंसा का पाप नहीं लगता। चुनांचि श्री स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश द्वादश समुल्लास में जैनियों को कहते हैं कि हरित शाक खाने में जीव का मारना मन को पीड़ा पहुंचना क्यों कर मानते हो हो? भला जब तुम को पीड़ा प्राप्त होती नहीं दीखती और जो दीखती हो तो हम को भी दिखलाओ। हमारे तार्फिक उपदेशक पं० लेखराम जी, पं० गणपति शर्मा जी तथा स्वामी दर्शनानन्द जी वृक्ष-वनस्पतियों में जीव मानते ही थे।

२–जब से बंगाल के बोस जी ने वनस्पतियों मे भ Feelmy साबित कर दिया है हमारी सुषुप्ति वाली दलील कमजोर पड़ गई है।

३-पुत्री पाठ शालाओं की खाना पकाने वाली पुस्तकों में मांस, मच्छी, अण्डा बनाने के विधि विधान हैं छात्रायें मुझ से पाप दोष की बात कहती हैं तो मुझ से पाप दोष की बात कहती हैं ता मुझ से ठीक उत्तर बन नहीं पाता-कृपया पथ प्रदर्शन करें।

नोट यह पत्र सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को ७.१०.६४ को पहुंचा आया था कोई उत्तर नहीं आया। साथ ही पं० विश्वनाथ जी पूर्व वेदोपाध्याय गुरु कांगड़ी को भी लिख भेजा क्यों कि सभी से मैं निराश हो चुका हूँ परन्तु विधानिक रूप से उनकी मानी जानी है इस लिये उनको लिखना अत्यावश्यक हो जाता है:—अस्तु।

पं० विश्वनाथ जी ने जो उत्तर ८.११.६४ को भेजा है यह सर्व साधारण आर्य जगत की सूचनार्थ नीचे दिया जाता है:—

बोस की पुस्तक ३० वर्ष पूर्व मैं ने पढ़ी थी अब उसके बारे में विशेष तथा ठीक ठीक (Imforession) मुझे नहीं रहा। वृक्ष आदि में अर्थात् वनस्पतियों में (feeling) तो है परन्तु इस प्रकार का (feeling) होता है जैसे के क्लोराफार्म दिये मरीज में होता है ऐसे मरीज के शरीर पर नशतर चलाओ तो उसे बाहरी (feeling) नहीं होता। अन्तरीय (feeling) तब भी बने रहते हैं वनस्पतियां भी ऐसी हालत में होती हैं। साथ ही यह भी भेद है कि वनस्पतियों के पत्ते, शाखा आदि काटने पर उनका फिर पुरोह (गगाड़) हो जाता है। परन्तु मनुष्य पशु पक्षीयों के अङ्ग कट जाने पर उनका स्वयं पुरोह नहीं होता इस लिये वनस्पतियों और हम लोगों अर्थात् चलने फिरने वाले प्राणियों के (feeling) में फर्क मानना ही पड़ेगा मच्छली आदि तो सुख दुःख का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

इस लिये उनका मारना और खाना प्राणी-हत्या है-हिंसा है इस लिये निषिद्ध है।

परिशिष्ट ५

उत्तर प्रतिशंका १९—माता की छः पीढ़ियों से अभिप्राय नाना के वंश की पीढ़ियों से ही है। रजस का प्रभाव याज्ञवल्क समृति के भाष्य कार मिताक्षरा वाले ने छः पीढ़ियों तक माना है। (मेरा विचार है रजस के ख्याल से पीढियां गिननी है तो वह बहु सास का सिलसिला नहीं माता की माता का होगा म.स.) और वीर्य का प्रभाव २४ पीढ़ियों तक। अतः माता की छः पीढ़ी छोड़ने की बात कही और २४ पीढ़ियों का क्रम क्यों कि बहुत लम्बा है। अतः पिता का गोत्र ही वर्जित कर दिया गया। मासी की लड़की के साथ विवाह जायज नहीं है क्यों कि मासी माता वाली पीढ़ी में ही सम्मिलित है। इसी प्रकार भुआ की

लड़की के साथ भी विवाह वैध नहीं है क्यों कि भुआ पिता के गोत्र में ही है।

गोत्र दो प्रकार के होते हैं एक वंश गोत्र—यह रक्त के सम्बन्ध से है और दूसरा विद्या गोत्र यह शिष्य परम्परा से चलता है।

मेरा नोट— आर्य जगत विचारों के इन बन्धनों के साथ जन्मजात और गोत्र का उन्मूलन हो सकता है ! —मेहरसिंह

परिशिष्ट ६

(क) पृष्ठ ५२ शंका ७० का उत्तर बिना निमित्त परिवर्तन नही होता। जल का गुण शीतलता है परन्तु अग्नि के योग से उसमें उस समय के लिए परिवर्तन हो जाता है। इस पर मेरा नोट आर्योद्देश्य रत्नमाला धारा ७७ में भी जीव का स्वरूप चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुख और ज्ञान गुण वाला तथा नित्य लिखा है। यहाँ पवित्र और धार्मिक नहीं लिखा। अतः न्याय और वैशेषिक दर्शनों की definations से मेल खाने के कारण अधिक माननीय ठहरती हैं। सत्यार्थ प्रकाश में किसी पण्डित ने गड़बड़ कर दी होगी। आर्य जगत और विद्वान् विचारें।

(ख) पृष्ठ ६५ प्रतिशंका ८३ तथा पृष्ठ ६९, ८४ ख के उत्तर नहीं मिले।

सार्वदेशिक आ॰ प्र॰ सभा का अपने जिज्ञासुओं के प्रति उपेक्षा

प्रथम भाग

(इन पत्रों के उत्तर नहीं आये)

(१) सभा पत्र ५१३ दिनांक १२-५-५६ के उत्तर में मेरा पत्र ता० ३-६-५६ विषय संध्या।

(२) श्री विश्वबन्धु जी ने वैदिक वर्णाश्रम धर्म पर मेरी प्रति शंकाओं के उत्तर नहीं दिये उनके पश्चात श्री वैद्यनाथ जी भी याद कराते थक गया।

पं० विश्वनाथ जी ने जो उत्तर ८.११.६४ को भेजा है वह सर्व साधारण आर्य जगत की सूचनार्थ नीचे दिया जाता है:—

बोस की पुस्तक ३० वर्ष पूर्व मैं ने पढ़ी थी अब उसके बारे में विशेष तथा ठीक ठीक (Imforession) मुझे नहीं रहा। वृक्ष आदि में अर्थात् वनस्पतियों में (feeling) तो है परन्तु इस प्रकार का (feeling) होता है जैसे क्लोरोफार्म दिये मरीज में होता है ऐसे मरीज के शरीर पर नशतर चलाओ तो उसे बाहरी (feeling) नहीं होता। अन्तरीय (feeling) तब भी बने रहते हैं वनस्पतियां भी ऐसी हालत में होती हैं। साथ ही यह भी भेद है कि वनस्पतियों के पत्ते, शाखा आदि काटने पर उनका फिर पुरोह (गमाड़) हो जाता है। परन्तु मनुष्य पशु पक्षीयों के अङ्ग कट जाने पर उनका स्वयं पुरोह नहीं होता इस लिये वनस्पतियों और हम लोगों अर्थात् चलने फिरने वाले प्राणियों के (feeling) में फर्क मानना ही पड़ेगा मच्छली आदि तो सुख दुःख का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

इस लिये उनका मारना और खाना प्राणी-हत्या है-हिंसा है इस लिये निषिद्ध है।

परिशिष्ट ५

उत्तर प्रतिशंका १९—माता की छः पीढ़ियों से अभिप्राय नाना के वंश की पीढ़ियों से ही है। रजस का प्रभाव याज्ञवल्क स्मृति के भाष्य कार मिताक्षरा वाले ने छः पीढ़ियों तक माना है। (मेरा विचार है रजस के ख्याल से पीढ़ियां गिनती है तो वह बहु सास का सिलसिला नहीं माता की माता का होगा म.स.) और वीर्य का प्रभाव २४ पीढ़ियों तक। अतः माता की छः पीढ़ी छोड़ने की बात कही और २४ पीढ़ियों का क्रम क्यों कि बहुत लम्बा है। अतः पिता का गोत्र ही वर्जित कर दिया गया। मासी की लड़की के साथ विवाह जायज नहीं है क्यों कि मासी माता वाली पीढ़ी में ही सम्मिलित है। इसी प्रकार भुआ की

लड़की के साथ भी विवाह वैध नहीं है क्यों कि भुआ पिता के गोत्र में ही है।

गोत्र दो प्रकार के होते हैं एक वंश गोत्र—यह रक्त के सम्बन्ध से है और दूसरा विद्या गोत्र यह शिष्य परम्परा से चलता है।

मेरा नोट— आर्य जगत विचारों के इन बन्धनों के साथ जन्मजात और गोत्र का अन्मूलन हो सकता है ! —मेहरसिंह

परिशिष्ट ६

(क) पृष्ठ ५२ शंका ७० का उत्तर बिना निमित्त परिवर्तन नही होता। जल का गुण शीतलता है परन्तु अग्नि के योग से उसमें उस समय के लिए परिवर्तन हो जाता है। इस पर मेरा नोट आर्योद्देश्य रत्नमाला धारा ७७ में भी जीव का स्वरूप चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुख और ज्ञान गुण वाला तथा नित्य लिखा है। यहाँ पवित्र और धार्मिक नहीं लिखा। अत: न्याय और वैशेषिक दर्शनों की definations से मेल खाने के कारण अधिक माननीय ठहरती हैं। सत्यार्थ प्रकाश में किसी पण्डित ने गड़बड़ कर दी होगी। आर्य जगत और विद्वान् विचारें।

(ख) पृष्ठ ६५ प्रतिशंका ८३ तथा पृष्ठ ६१, ८४ ख के उत्तर नहीं मिले।

सार्वदेशिक आ: प्र: सभा का अपने जिज्ञासुओं के प्रति उपेक्षा

प्रथम भाग

(इन पत्रों के उत्तर नही आये)

(१) सभा पत्र ५१३ दिनांक १२-५-५६ के उत्तर में मेरा पत्र ता० ३-६-५६ विषय सध्या।

(२) श्री विश्वबन्धु जी ने वैदिक वर्णाश्रम धर्म पर मेरी प्रति शंकाओं के उत्तर नही दिये उनके पश्चात श्री वैद्यनाथ जी भी याद कराते थक गया।

(३) श्री स्वामी ध्रुवानन्द प्रधान जी की आज्ञा से पं० कालि-चरण जी मन्त्री ने अपूर्ण उत्तर दिये। सभा पत्र १०५३ ता १०-७-६२ पर मेरा पत्र ता १३-८-६२ स्मरण पत्र ता २५-३-६३।

(४) मेरी प्रकाशित संस्कार विधि प्रश्नोत्तरी के पृष्ठ १५ पर निष्कर्ष के बारे में मेरा पत्र ता० १२-१२-६२ स्मरण ता० २५-३-६३।

(५) १३-१२-६२ शुल्क आप का शतांश न दे कर भी सभासद बताये जाने की प्रथा के आन्दोलन के बारे में।

(६) १७-१०-६३ कई वेद मन्त्रों के एक से अधिक स्थलों पर आने पर भी अर्थ एक ही चल रहे हैं।

(७) २५-१०-६३ उपदेशकों तथा संन्यासियों को फूल मालायें पहनाये तथा उत्सव आदि पर सजावट के लिए पुष्पों के प्रयोग को बन्द करने के बारे में।

(८) १-११-६३ यजु० ३० अध्याय के भाष्य के बारे में

(९) २२-११-६३ (१) वैदिक वन्दनपुस्तकें, रचित स्वामी ब्रह्म मुनि जी के विषय में (२) विशेष लेख आर्यसमाज की उन्नति में ६ बड़ी बाधायें।

नोट;—९-१०-६४ तथा ७-४-६४, १२,६,६४, ७-१०-६४ के पत्रों में श्री कार्यालयाध्यक्ष जी को उपरोक्त विषयों पर संयुक्त पत्र स्मरण के रूप में।

मेहरसिंह यमतोल

आर्य समाज के दस नियमों के सम्बन्ध में वेद मन्त्रों की खोज (वेदवाणी वर्ष १० अङ्क १६)

प्रथम नियम—सब सत्य विद्या और विद्या से जो पदार्थ

जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है॥ वेद मन्त्र (यजु० ४०।८)

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरᳫं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधा-
च्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

श्री स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लासमें 'वेद विषय' में इसके दूसरे भाग को उद्धृत कर यह अर्थ लिखा है-जो स्वयम्भू सर्वव्यापक शुद्ध सनातन निराकार परमेश्वर है वह सनातन जीव रूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीति पूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है।

द्वितीय नियम—ईश्वर सच्चिदानन्द[1] स्वरूप निराकार[2] सर्वशक्तिमान[3] न्यायकारी[4] दयालु[5] अजन्मा[6] अनन्त[7] निर्विकार[8] अनादि[9] अनुपम[10] सर्वाधार[11] सर्वेश्वर[12] सर्वव्यापक[13] सर्वान्तर्यामी[14] अजर[15] अमर[16] अभय[17] नित्य[18] पवित्र[19] और सृष्टिकर्ता[20] है उसी की उपासना करनी योग्य है[21]॥

१ वेद मंत्र:-यजु ३।३० की व्याहृतियां भूर्भुवः स्वः।
आर्याभिविनय में भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः—

२, ३, ८ निराकार, अजन्मा, निर्विकार—प्रथम नियम के सम्बन्ध में ऊपर दिये ४०।८ यजु० के शब्द अकाय, अव्रण, स्वयम्भू, अस्नाविरᳫं के अर्थों से यह गुण विदित हो जाते हैं।
न्यायकारी त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः॥३॥
ऋक २।१।४।

इस मंत्र में अर्यमा का अर्थ न्यायकारी है।

५ दयालु नीचे दिये—ऋ० १,१०,६ का आखिरी शब्द।

तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये।

स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः॥

६, ७ अजन्मा, अनन्त—अथर्व० ६,५,२१ में अजः और अप्रिमितः

सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्व सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः।

एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः॥

६ अनादि १८ नित्य-पहिले नियम में दिये मंत्र का शब्द शाश्वतोभ्यः

१० अनुपम—ऋ० ४, ३०, १ नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायां अस्ति वृत्रहन्। नकिरेवा यथा त्वम॥

अर्थ—हे इन्द्र! तुझ से उत्तम और तुझ जैसा कोई नहीं।

११ सर्वाधार—यजु० १३।४

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

सदाधार पृथ्वी द्यामुतेमां कस्म देवाय हविषाविधेम॥

१२ सर्वेश्वर—अथर्व० ११,४,१

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।

यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

१३ सर्वव्यापक संध्या के पहले मन्त्र में आपः और दशवें में विष्णु।

१४ सर्वान्तर्यामी—सन्ध्या का उपस्थान मंत्र—

उदुत्य जातवेदसम्। पैदा हुवे हुवे को जानने वाला

१५, १६ अजर-अमर—अथर्व १०,८,४४। में अजर तथा अमृतः

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू

रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।

त्वमेव विद्वान् न बिभाय मृत्यो-

गत्मानं धीरमजरं युवानम् ॥

१७ अभय—ऋ० ६,५५,४

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥

१६ पवित्र—पहिले नियम के लिये मंत्र में शब्द शुद्धम् ।

२० सृष्टिकर्ता—ऋ० १०,१६०,३ संध्या में अघमर्षण मंत्र में यथापूर्वमकल्पयत् ।

२१ उसी की उपासना करनी योग्य है—ऋग्वेद के पहिले मत्र के पहिले शब्द अग्निमीले पुरोहितम्......

तीसरा नियम—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥यजु० २६।२।

अथ—परमेश्वर कहता है कि जैसे मैं सब मनुष्यों के लिये इस कल्याणी अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने हारी वाचं (इन शब्दों मे सब विद्याएँ निहित हैं) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो ।

चौथा नियम—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥वेद मंत्र यजु० १।५।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥

अर्थात्—मैं झूठ को छोड़ कर सत्य को प्राप्त होऊं ।

पांचवां नियम—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहियें ॥ चूंकि धर्मानुसार का अर्थ सत्य, असत्य का विचार लिखा है, यह नियम भी यजु० १।५ में ही स्पष्ट है। तैत्तिरीय उपनिषद् में आया 'सत्यं वद धर्मंचर' इसकी पुष्टि करता है ।

छठा नियम—(क) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् (ख) शारीरिक (ग) आत्मिक और (घ) सामाजिक उन्नति करना ॥

(क) यजु० ६।२१ आयुर्यज्ञेन कल्पताम्……

(ख) शारीरिक (१) अथर्व० २.१३,४ अश्मा भवतु ते तनूः। तेरा शरीर पत्थर समान हो (२) यजु० ३।१७ तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मे आपृण ॥

(ग) आत्मिक (१) यजु० २५।१३ य आत्मदा बलदा…(२)

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।

तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ यजु० ४०।३।

आत्मा के हनन करने वाले अन्धकारमय लोकों में जाते हैं।

(घ) सामाजिक ऋ० १०।२१,१।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

कामनाओं और धन ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए प्रार्थना।

संध्या के मनसा परिक्रमा मंत्रों में—

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

सामाजिक शांति को बनाये रखने की पराकाष्ठा है।

सातवां नियम—सबसे (क) प्रीतिपूर्वक (ख) धर्मानुसार (ग) यथायोग्य वर्तना चाहिये॥ (ख) पांचवें नियम में आ चुका (क) और (ग) यजु० १८.४८

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।

रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥

चारों वर्णों में हम रुचिकर प्रीतिपूर्वक व्यवहार करें। सम्बन्धानुसार यथायोग्य हो जायेगा।

आठवां नियम—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ॥ (१) तमसो मा ज्योतिर्गमय। (शत-पथ) (२) सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास ऋ० १०,७१.४—

उत त्वःपश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वःशृण्वन्न शृणोत्येनाम्।

उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥

अर्थ—जो अविद्वान हैं वे सुनते हुये नहीं सुनते देखते हुये नहीं देखते अर्थात् अविद्वान लोग उस विद्या वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते। किन्तु विद्वान के लिये विद्या अपने स्वरूप का उसी प्रकार प्रकाश करती है जैसे स्त्री अपने शरीर और स्वरूप को अपने पति के सामने प्रकट करती है॥

नवां नियम—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट नहीं रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये॥

(१) अथर्व० कांड ३ सूक्त ३० मंत्र ७

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि एकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।

देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु॥

अर्थ—मैं तुमको सह वर्तमान, परस्पर का हितैषी, एक ही कर्म में शीघ्र प्राप्त होने वाले परस्परिक उपकार में नियुक्त करता हूं। तुम विद्वानों के तुल्य सुख की रक्षा करते हुये सायं प्रातः प्रेम से मिलो। तुम्हारे मन का सद्भाव सदा बना रहे (२) अथर्व० कांड ३ सूक्त ३० मंत्र ६

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः। अर्थात् तुम्हारा खान पान एक जैसा हो।

दशम नियम—(क) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और (ख) प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें॥ प्रमाण (क) इस भा

का मूलाधार संगठन है इसके लिये देखें अथर्व० १६,४८,४ व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणः । अर्थ संगठन करो, इससे तुम्हारी रक्षा होगी । (ख) व्यक्तिगत उन्नति के लिये देखें अथर्व० २.११.५ आप्नुहि श्रेयांसमति समंक्राम । अर्थ—श्रेष्ठों तक पहुँच । बराबर वालों से आगे बढ़ ॥

[वयोवृद्ध, ऋषि के परम भक्त, आ० स० के कार्यकर्त्ता, लाहौर निवासी श्री मेहरसिंह जी आर्य ने अपनी आयु के बहुत अन्तिम भाग में 'आर्यसमाज के नियमों के सम्बन्ध में वेदमन्त्रों की खोज' विषयक अपने विचार लिखने का अद्भुत साहस किया है जो उनकी निष्ठा का परिचायक है। ऐसे वयो-वृद्ध आर्यसमाज की विभूति हैं। उन्हें कहां तक आर्यसमाज की लग्न है यह देखकर वेदवाणी के पाठकों को प्रेरणा मिलेगी, इस विचार से हम इस लेख को छाप रहे हैं।

लगभग ४०° वर्ष पहले मैंने इनके दर्शन किये थे जब कि इनके पूरे बाल श्वेद हो चुके थे। आर्यसमाज का प्रचार ऐसे महान् आत्माओं के प्रयास से ही हुआ है। सम्पादक]

(श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु)



		अशुद्ध	शुद्ध
पृष्ठ ६० लाईन	१४		आरम्भ में (पेरा २४) चाहिये
,, ६१ ,,	१५	उत्त	उत्तर
,, ६५ ,,	१४	दन	दिन
,, ६८ ,,	६	भवना	भावना
,, ६६ ,,	७	(नीचे से) आन	आना
,, १०० ,,	६	रखो	रखओ
,, ,, ,,	८	तीव	प्रतीव
,, १०१ ,,	४	(नीचे से) शत्तरवां	सत्रहवां
,, १०३ ,,	२	यचु	यजु
,, १०४ ,,	१३	सभाद्वा	सभाद्वारा
परिशिष्ट ३			
,, कख	४	ऋषि ने	ऋषि ने करदी है
ख	६	दक्षणा	लक्षणा

वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

पृष्ठ संख्या १३४

❁ भजन ❁

१—अन्त समय में हे जगदीश मुझ को,
तुम्हरा ही सिमरण तुम्हरा ही ध्यान हो।
२—लवलीन हो तुझ में चित वृत्ति मेरी,
जब तक कि स्वासों में प्राण और अपान हो ॥ १
३—न शोक हो न मोह हो न ममता किसी में,
न पीड़ा हो तन को न कुछ दुःख भान हो।
४—योगी के सदृश लगाऊं समाधि,
ओंकार अक्षर का वाच्य एवं ज्ञान हो ॥
५—जीवात्मा का निवास हो वहाँ पर,
जहां तेरे सुख पद का उत्तम स्थान हो।

—शुभ समाचार—

१०-४-६५ को मैं ८५ वर्ष का हो जाऊंगा ७-५-६५ को मेरी पोती और अक्तूबर ६५ में मेरे पौत्र के शुभ विवाह होने वाले हैं। मेरी सातवीं और अन्तिम कृति मेहर स्वाध्याय सार द्वितीय बार दो महीनों में छप जाएगी। इन हर्षोतपादिक अवसरों को ध्यान में रखते हुए इसका मूल्य लागत से आधा २० पैसे रखा गया है। अधिकारी जनों को मुफत भी दी जा सकेगी। इसकी विशेषता यह है कि इसमें वेद प्रश्नोत्तारी को महत्व दिया गया है! यह पुस्तक गोविन्दराम हासानन्द पुस्तकों वाले ४४०८, नई सड़क, दिल्ली ६ से भी मिल सकेगी।

विनीत—

ता० ११-४-६५
२८७६, सं० २०२१ वि०

मेहरसिंह यमतोल
४०७ तिमारपुर, दिल्ली-६

मुद्रक—नाथ प्रेस, कनखल रोड, पो० गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी